• श्री सद्‌गुरु महिमा •

ध्यान मूलं गुरु मूर्ति पूजा मूलं गुरु पदं ।
मंत्र मूलं गुरु वाक्यं मोक्ष मूलं गुरु कृपा: ॥

1. 'सद्‌गुरु वही कि जो आश्रय प्रदान कर स्वयं निराश्रयी रहे।'

२. श्री सद्‌गुरु में अखंड लक्ष्यधारा रखनी चाहिए। स्तवन एवं स्मरण रूप में उनका अखंड ध्यान धरना चाहिए और उस धारा में कोई व्यवधान (बाधा) नहीं पड़ना चाहिए। यह शरण उस अलौकिक पद्धति का शरण है।

3. सद्‌गुरु का कर्तव्य इतना ही कि आश्रव-परिणति को संवर-परिणति में परिवर्तित करना। सद्‌गुरु की आज्ञानुसार जैसा वे कहें वैसे चलना-वर्तन रखना।

4. सत् वही सद्‌गुरु। सद्‌गुरु को आत्मभाव से पहचानने पर ही अपनी आत्मा को पहचाना जाता है।

5. वीर की भाँति उनमें (सद्‌गुरु में), उनके स्वरूप में, उनकी भक्ति में, उनकी मुद्रा में और उनके आचरण में लक्ष्यधारा रखना उसका नाम शरण।

6. श्री सद्‌गुरु अपनी शरण में लेकर जहाज में बिठाते हैं और किनारे पर पहुँचाते हैं। चेतन यदि शरण में जायँ तो वह पार पहुँचे ही।

7. जो भी विकल्प निमित्त पाकर उठते हैं वे विकल्प बाधक नहीं है। यह मेरा, यह तेरा, यह करें, यह न करें ऐसा वे विकल्प नहीं करते। अगर यह जीव स्वयं को और विकल्पों को भिन्न न जानता हो तो वह आश्रवजल में बह जाता है। ऐसे आश्रवजल में बहे जा रहे मनुष्यों को श्री सद्‌गुरु ही तारते है। अतः सद्‌गुरु का कितना उपकार गिना जाएगा?

8. सद्‌गुरु हमारे ट्रस्टी बनते हैं, मालिक नहीं। सद्‌गुरु की दृष्टि भिखारी पर पड़े तो भिखारीदशा रहे ही नहीं! सद्‌गुरु की दशा पहचाने तो दृष्टि बदलती है।

9. श्री सद्‌गुरु मार्ग की पहचान करा दे। मार्ग के विषय में शिक्षा प्रदान करें। परंतु चलकर नहीं दे। यहाँ तो स्वयं ही ज्ञानी के कहे अनुसार उसे बतलाये हुए मार्ग पर चलना पड़े।

10. अनादिकाल के संस्कार जीव को परावलंबी बनाते हैं। वे असद्-निमित्त है। ज्ञानी सद्-निमित्त को आयोजित करते हैं। जहाँ तक अमुक योग्यता आये नहीं और सीधे सीधा पहुँच जाय यह असंभव है।

11. इस जीव ने सद्‌गुरु के उपकार को जाना नहीं है, समझा नहीं है और यदि समझेगा नहीं तो शुद्ध आत्मस्वरूप को कैसे पाया जा सकता है?

12. परम कृपालु देव कहते हैं कि "आत्मा है।" जैसे घटपटादि हैं वैसे आत्मा है। जैसे शरीर को वस्त्र के साथ संबंध है, वैसे आत्मा को शरीर के साथ संबंध है। जहाँ तक आत्मा का परिचय नहीं तबतक सारा जानना व्यर्थ। शरीर और वस्त्र अपने

अपने अपने को जानते नहीं है उस प्रकार दूसरों को बतलाते नहीं है। परंतु जो अपने को जानता है और दूसरे को भी जानता है वह आत्मा है।

13. महावीर' वीरों के वीर। दर्शनमोह को जीते वह महावीर। जिसका स्वभाव कृपालु, जिसकी दृष्टि ही अमी, वे कृपालुदेव, वे महावीर। उनकी दृष्टि पड़ते ही 'मैं शरीर हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ' —ऐसा कहनेवाले, 'मैं आत्मा हूँ' कहने लग जाते हैं।

14. स्थायी शरण लेकर अगर जीव दुःख पाये तो वह भ्रमपूर्ण शरण है।

15. सद्गुरु वह पद है और सद्धर्म वहाँ पहुँचानेवाला है। उस पद पर जो जो विराजित है वे अनुपम रूप से शोभित हैं। उनके चरण में कुछ अर्पण करना चाहिए। क्या? —मस्तक। मस्तक चढ़ाने से उन्हें सर्वभाव अर्पण किया जाता है। उनका शरण स्वीकार किया जाता है। शरण स्वीकार करने से हमें वे उस पद पर पहुँचाएँगे न? और वे तो प्रकट महावीर है कृपालुदेव हैं।

16. मस्तक क्यों चढ़ाना होता है? जिन्होंने अपना—आत्मा का भान करवाया, भवभ्रांति से छुड़वाया, तो उनके चरण में कोई ~~कंकड़~~ थोड़े ही चढ़ाया जाएगा? मस्तक ही चढ़ाना चाहिए।

17. वाणी के द्वारा नहीं समझी जानेवाली वस्तु जिसकी समीपता से सहज में समझ में आ जावें वे उपाध्याय। उत्कृष्ट आचार-धारा जिन की हो वे आचार्य।

18. ~~सद्गुरु के चरणकमल की वेदी~~ पर आत्म-बलिदान करना चाहिए। तो जो आत्मा अनादिकाल से समझ में नहीं आती थी, उस आत्मा को वह जानेगा—समझेगा।

19. ज्ञान हो जाने पर भी ज्ञानी भक्ति को छोड़ते नहीं हैं। जो अपने स्वरूप में ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप के द्वारा लीन हुए हों वैसे सिद्ध भगवान को नमस्कार हो।

20. आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और आत्मसमाधि के द्वारा जिस के उपयोग की धारा 'योग' (= मन, वचन, काया के तीन योग) से छूटकर आत्मा के साथ मिल चुकी है ऐसे मुक्त पुरुष को नमस्कार।

21. सत्पुरुष के चरण में राग रखें (करें) क्योंकि तुम्हारे राग से वे बंधनेवाले नहीं हैं, जिस से तुम्हारा राग छूट जाएगा और राग से रहित आत्मा होगी।

22. आत्मा के उपयोग को सद्गुरु के द्वारा उन्होंने जो कुछ बोधवचन समझाये हों उनके आशय को समझ कर उनमें उपयोग को जोड़कर रखें। अपने जो दोष उठें उन्हें सरल-निरालस भाव से निवेदित कर के दबा दें - काट डालें। कभी स्वच्छंदी न बनें और सद्गुरु के योग में मन को जोड़ें। उसे योगसाधन कहते हैं।

23. जो जिस का हो वह उसे सौंप देना। शरीर जगत का है इसलिए जगत को सौंप देना। आत्मा परमात्मा को सौंपकर जैसा का वैसा रहना।

24. जो अतीत - भूतकाल में मोक्ष सिधारे, वर्तमान में सिधारते हैं और भविष्य में सिधारेंगे वे सभी भक्ति के प्रयोग के द्वारा। बिना भक्ति के मुक्ति नहीं मिलती। श्री सद्गुरु के चरण में निवास हो तो दीप से दीप प्रज्वलित हो।

25. किसी एक व्यक्ति में आत्मऐश्वर्य प्रकट हुआ हो तो उन के प्रति भक्ति रखना यही सद्धर्म है।

26. श्री सद्गुरु को भजने से, उनके गुणों का भान (बोध) होने से उन गुणों को भी प्राप्त किया जा सकता है जैसे श्रेणिकादि

ने दर्शनमोह जीतने से तीर्थंकर को मान्य किए। उनमें जो दर्शनमोह व्यतीत हुआ और 'मैं आत्मा हूँ' यह भाव प्रकट हुआ वही उपासना हमें करनी है। और उस उपासना से ही यह गुण उत्पन्न होता है।

27. तीर्थंकर माता के उदर में आने पर भी मैं आत्मा हूँ यह भूलते नहीं हैं। इसलिए इन्द्र भी उन्हें पूजते हैं। जिस में क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट हुआ उसे भगवान मानकर पूजने में कोई बाधा नहीं हो सकती है। इस काल में २००४ युगप्रधान होंगे। और वे सभी क्षायिक सम्यक् द्रष्टा है। उनकी तीर्थंकर की भाँति पूजा करनी चाहिए। चरण की पूजा करनी चाहिए, उसमें भी रहस्य है। कृपालुदेव के चरण आत्मज्ञान प्रकट करते हैं।

28. सत्संग जैसा बलवान साधन ही कर्म को खपा डालता है। पुरुषार्थ के एन्जिन द्वारा जीवनगाड़ी आगे बढ़ती है।

29. सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए परम कृपालु देव को — सत्पुरुष को खोजो और उनकी उसी प्रकार से आराधना करो जैसी तीर्थंकर की आराधना करते हो।

30. जो स्वयं स्वयं के द्वारा ही परितृप्त हैं, जिनका जीवन दूसरों के दुःखरूप नहीं है, जो दूसरों को कोई भी दुःख देते नहीं है, वैसे स्वरूपसुख को लेकर परितृप्त, कृतकृत्यता अनुभव करनेवाले आत्मज्ञानी इस विश्व में परम सुखी है।

31. जीवन में जब परम विनयगुण आता है तब आत्मा में दीनता — लघुता के दो महान गुण प्रकट होते हैं। विनयान्वित शिष्य को वे दो गुण ज्ञानी भगवान के चरणकमल में ले जाते हैं। "मैं जानता हूँ" यह इस विनयगुण को बाधकभाव है। उस भाव के हटने — दूर होने से सच्चा विनयगुण प्रकट होता है।

32. किसी घनघोर जंगल में संग-साथ से कोई मनुष्य अलग पड़ जाय, रात्रि अँधकार से घिरती जाती हो, अकेलाभूला वीरान वन

में भूख-प्यास भटकता हो, शेर-बाघ की गर्जनाएँ सुनाई देती हों, हृदय उनके भय से धड़कता हो, ऐसी असहाय दशा में लघुता और दीनता का उस जीव को जो 'वेदन' हो, वैसा वेदन, मैं विषयपन में फँसा हुआ हूँ, उसमें से किस प्रकार पार उतरूँ, इसके लिए होना चाहिए। ऐसा वेदन जब होता है तब सच्ची लघुता-दीनता और विनय के गुण जीवन में प्रकट होते हैं।

33. मार्ग सुगम है, सरल है, परंतु प्राप्ति का योग पाना दुर्लभ है। प्राप्त जीव (अन्य को) प्राप्त करा सकता है, उसके सिवा किसी अन्य प्रकार से किसी को मार्ग प्राप्त नहीं होता।

34. परम कृपालुदेव ने कहा कि 'असंगता के साथ आप का सत्संग हो तो आखिर का भी परिपूर्ण प्रकाशित हो सकता है।' कोई प्रयोगवीर खोज करें तो परम कृपालु की अद्भुत दशा की पहचान पा सके।

35. श्वास लेते हुए कहें— 'सहजात्मस्वरूप'। श्वास छोड़ते हुए कहें— 'परमगुरु'। 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'। मन यदि इस मंत्र में लीन हो जाय तो अंतर्मुखता प्राप्त करे। निद्रादि हुए हो, चैतन्यप्रदेश में वह ध्वनि पहुँचता है। 'स्वरूपस्थिति में शरीर का भान (बोध) नहीं रहता है।'

36. सर्वांग प्रकाश न हो तब तक साकार ऐसे परम कृपालुदेव की मंगल मुद्रा को हृदयमंदिर की वेदिका पर संस्थापन करें—स्थिर करें। 'मनसा (भाव) प्रेम-मसाला' लगाकर उस मंगलमूर्ति को हृदय-सिंहासन पर ऐसी स्थिर करें कि हिले या चले (डुले) ही नहीं। स्थिर करें तो स्थिर रहती है और सर्वांग से अनंत गुणविशिष्ट प्रकाश होता है। उससे हृदयादि कमल विकसित होते हैं। 'पुष्पपूजा' के द्वारा हृदयादि कमल खिले या नहीं वह जाँचने की संज्ञा है। उसमें से सुगंध उछलती है। उसके प्रतीक के रूप में 'चंदनपूजा' है। आत्मा उस सुगंध का वेदन करती है।

37. नाई के हाथ में जैसे मस्तक सौंपा जाता है वैसे सद्गुरु में अपना मस्तक सौंप देने का विश्वास चाहिए। ऐसा विश्वास जिस का हृदय का पूरा (संपूर्ण) होता है वह सुपात्र शिष्य है। ऐसे विश्वासु जीव आज शायद ही दिखने को मिलते हैं। नागडिरिक को भी परवाह नहीं करते। प्रायः ऊपर ही देखने को मिलता है। परमकृपालुदेव ने आत्मसिद्धि किसे दी थी? उसके पात्र ऐसे जीव उस काल में उन्होंने कितने देखे थे? किसी की दया किसी (दूसरे) को काम नहीं आती। 'आत्मसिद्धि' भवरोग का परम औषध है। कोई विरले जीव ही उसे प्राप्त करते हैं।

38. आत्मा की अनुभूति के लिए सुयोग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चाहिए। साक्षात् अनुभूति के मार्ग पर चढ़ायें उसकी प्रथम आवश्यकता है। कौन चढ़ायें? श्री सद्गुरु।

39. जिसे आत्मसंवेदन में आगे बढ़ना हो उसे शांत वातावरण में रहना चाहिए। स्वसंगमंडल में बैठकर किसी भी जान-पने का अभिमान होता हो तो एकांत में बैठकर उस अभिमान को ज्ञानविचार द्वारा निवृत्त करना चाहिए। "मैं किस प्रकार ललकारता (गाता) हूँ! लोगों की दृष्टि मेरे प्रति आकर्षित हो!" यह सब मिथ्या अभिमान है। ~~पछतावा और पानी में~~ अपरसरापन। जीव को भक्ति में एकतान होने नहीं देते। यह सारी कायिक प्रवृत्ति है।

40. जिसे अहंवृत्ति का त्याग करना हो उसे एकांत में बैठकर श्री सद्गुरु बतलाये वह साधना करने की आवश्यकता है। उसका साधन — श्वास लेते 'सहजात्मस्वरूप', श्वास छोड़ते 'परमगुरु': अनुभूति के अर्थी को प्रतिदिन इस महामंत्र की 200 माला फेरनी चाहिए। 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' इस महामंत्र का जाप चैतन्यविज्ञान के प्रयोगवीर बनने हेतु अत्यंत आवश्यक है। प्रारम्भ के छह माह विद्यार्थीरूप में चित्तशुद्धि के कार्य में लग जाना। और उसके लिए उस महामंत्र का जाप रातदिन जपते ही जाना।

41. गृहपास में बसते हुए बहुत वर्षों पूर्व मुंबई में हमने 'मायामच्छेन्द्र' की फिल्म देखी था। गोरखनाथ अपने गुरु मच्छेन्द्रनाथ को एक बार कहते है कि "मुझे माया का दर्शन करवाईये!" यकायक गोरखनाथ को अनुभव होता है कि मानों वह किसी दूसरी ही दुनिया में है। अपने गुरुदेव मच्छेन्द्रनाथ को, कामरु देश में हिंडोला खाट - झूले-पर कामरु देश की महारानी के साथ झूलते हुए वह देखता है। इनका बालक वहाँ खेल रहा है। गुरुदेव को ठिकाने लाने वह वहाँ जाता है। वहाँ के सिपाही गोरख को पिंजड़े में बंद कर देते हैं। वहाँ के बसंतबाग में वृत्तियों को केवल कामभोग में, वैभव विलास में प्रेरित करे वैसा मादक वातावरण है। गोरख वहाँ गुरुदेव के पास जा पहुँचता है, 'चेत मछन्दर गोरख आया'। झूले पर रानी के साथ झूलते हुए देखे हैं, परंतु गुरु की ओर का भक्तिभाव बदलता नहीं है। गुरु ने सोने की एक ईंट रखी थी। रास्ते में उस ईंट को गोरख कुएँ में फैंक देता है। गुरुदेव मच्छेन्द्रनाथ ने स्वयं ही विकुर्वित माया वे वापिस खींच लेते है और गोरख से कहते हैं कि, "वत्स, देखी तुमने माया!"

42. श्री देवचंद्रजी ने श्री यशोविजयजी के अष्टकों टीका में एक कथा कही है:

एक सद्गुरुदेव थे। उन्हें सर्वभाव से समर्पित बना हुआ एक विनयान्वित सुशिष्य था। पद्मासन में गुरुदेव रात्रि के समय ध्यानदशा में लयलीन होकर विराजे रहे हैं। पास में बालशिष्य सो रहा है। पूर्वजन्म का एक वैरी सर्प उस शिष्य को डँसने हेतु त्वरा से आ रहा दिखाई दे रहा है, गुरुदेव को अपने ध्यान में। शिष्य तो गुरुदेव के चरणों में निश्चिंत होकर सोया हुआ है। शरणभाव की यही बलिहारी है। जिसने सब कुछ ही श्री गुरुचरण में सौंप दिया है उसे चिंता काहेकी? ज्ञानी भगवान का करुणा स्वभाव ऐसा होता है कि जो अधिक में अधिक पापी, वह अधिक में अधिक कृपापात्र उनके मन होता है।

43. दुर्भागी जीव कि जिन्हें अनंतानुबंधी कषाय का उदय होता है, उन्हें सत्पुरुष का बोध भी कार्यकारी नहीं होता है। उस साँप को गुरुदेव ने प्रतिबोधित किया कि 'वैरभाव छोड़ दे!' परंतु साँप ने कहा माना ही नहीं: 'मुझे तो इसका लहू ही पीना है।'

आचार्यदेव ने तीव्र अनंतानुबंधी का उदय उसमें देखा। अपने आत्मलक्ष्य को अखंड रखकर आचार्यदेव सारे श्रीसंघ को सम्हालते हैं, जैसे ग्वाला गायों के झुंड को सम्हालता है। श्री सत्पुरुष का योगबल कितना चमत्कारिक काम करता है उसका यह एक रम्य चित्र है। शिष्य तो निद्रा में है। उसकी छाती पर गुरुदेव चढ़ बैठते हैं। शिष्य धीरे से आँख खोल कर देखता है और आँख बंद कर शांत पड़ा रहता है। गुरुदेव कांटा लेकर उसकी अमुक नस खोलते हैं। लहू एक प्याली में लेते हैं। वह लहू सर्प को दिया और सर्प वह पी गया। वैरभाव खत्म हुआ। सर्प वैर को वसूल किये का संतोष मानता है और चला जाता है।

प्रातःकाल गुरुदेव शिष्य से पूछते हैं: "मैंने तेरा लहू लिया यह तू देखता था फिर भी तूने मुझे क्यों कुछ नहीं पूछा?"

विनयान्वित शिष्य ने गुरुदेव को उत्तर दिया: प्रभो! इस मन, वचन, काया के योग तो मैंने आपश्री को अर्पण कर दिए हैं। आप की वस्तुओं का उपयोग आप कैसा करते हैं उसके विषय में मुझे विचार करने का क्या हो सकता है? आप मेरा हित ही करेंगे इसलिए मुझमें कोई विकल्प उठे ही नहीं। धन्य है ऐसे शिष्य को। ऐसे शरणागत भाव और नामस्मरण की जीवों के लिए आवश्यकता है।

५५. एकाग्रता से किया हुआ मंत्रजाप तुम्हारा रक्षण करेगा। यह हृदय में लिख रखने की अमूल्य वस्तु है।

५६. आत्मा में अनंत शक्तियाँ हैं। परम कृपालुदेव श्री टोकरशीभाई को इस आत्मशक्ति से ही होश में लाए थे। यदि बेहोश दशा में देह छूट गया होता तो अनादि के प्रवाह में जीव खींचा जाता। अपने अपार योगबल के द्वारा परम कृपालु भगवान ने अपने शरणागत का उद्धार किया था।

५७. चैतन्य की अद्भुत शक्ति है। अपने चैतन्य प्रकाश को सामनेवाले पर फेंककर फिर उसे सद्बोध करते हैं। दृष्टि पड़ जाय कि आग लग जाय वैसी चंडकोशिया नाग में सत्ता थी। भगवान तो "विचरे उदय प्रयोग" के अनुसार विचरण कर रहे हैं। शरीर का क्या होगा उसका उन्हें भय नहीं था।

भगवान उस जंगल में प्रवेश करते हैं जिस जंगल में चंडकोशिया है। उसके बिल के पास आकर मौनपूर्वक करते हैं। भगवान ने पाँच प्रतिज्ञाएँ ली थीं। उनमें-से एक मौनत्व की थी। 'चैतन्यपिशाण प्रकट करने का प्रयोग है अखंड मौनत्व को भजने का।' अनंत करुणा के अधिपति ने चंडकौशिक को मौनत्वपूर्वक वह अमृतरस पिलाया।

47. सत्पुरुष की आत्मा की चेष्टा की ओर दृष्टि रखना वह क्या है? शुद्धचैतन्य आत्मा में प्रतीतिरूप में उपयोगधारा का लीन रहना। दर्शनावरण का प्रभाव शरीर पर पड़ता है, आत्मा पर नहीं। प्रवृत्ति में लक्ष्यधारा रहे। अनुभव की गई धारा का लक्ष।

48. आत्मलक्ष्य जहाँ अखंड है, ज्ञानगंगाजी में नहा-धोकर जो परम शीतल होकर देखते हैं, उन्हें अन्य बेचारे जीव कि जो आर्त्त हैं, उनका दुःख देखकर कंपन होता है। अपने ही आत्मप्रदेश में होता है। उसे टालने हेतु वे ज्ञानी पुरुषार्थ करते हैं। उपकार की भावना रखें तो जीव को जलन हो।

49. अमुक कैवल प्रकाश जो बाहर फैलता है उसे अंतर्मुख करना चाहिए। सद्गुरु ने दिशा सुझाई है: "बाहर देखना छोड़ दो।" बहुत देखा। आज तक जो अनुभव हुए, वही अनुभव, बहिर्मुख रहने पर लाखों वर्षों तक भी होते ही रहेंगे। परंतु उनसे जीव को शांति नहीं मिलेगी, आकुलता नहीं टलेगी।

50. अर्ध पुद्गल परावर्तनकाल है वह रात्रि का अपराध-काल है। उसमें श्री सद्गुरु का योग प्राप्त हो और जीव यदि चेत जाय तो इस दुःखमें से पार हो जाय। सद्गुरु सही दिशा बतलाते हैं। उन्हें कोई स्वार्थ नहीं है। वे बतलाते हैं उस दिशा पर चलते हुए मेरा गाँव मुझे अवश्य मिलेगा। अखंड विश्वास।

51. रास्ता भूलते हैं तब प्रत्येक व्यक्ति को पूछकर जानते हैं। — रास्ता बतलानेवाले की विशिष्टता क्या है यह देख-जानकर विश्वास करना चाहिए। फिर वे बतलायें उस मार्ग पर चलते चलते अपना घर प्राप्त हो जाएगा।

52. श्रीसद्गुरु मिले हैं — उन्होंने दृष्टि बदलने का उपदेश किया है। तुम देखो और जानो उसमें पाप नहीं है। दृष्टा — देखनेवाले — को भूलकर देखना-जानना और फिर रागद्वेषादि भाव करने उसमें पाप है। यह शरीर दृश्य नहीं है, दृष्टा नहीं है। श्मशान में पड़ा हुआ मुर्दा कुछ देखता नहीं है। "मैं आत्मा हूँ" यह पकड़ ठीक से, बराबर, होनी चाहिए।

53. द्रव्य को देखने की ज्ञानियों ने कही हुई बात भुला दी जाती है। द्रव्यदृष्टि से देखने पर सारे ही मनुष्य, पशु आदि के कलेवर मिट्टी के पुतले हैं। 'एक अवस्था विशेष', 'परमगुरु जैसा सहजात्मस्वरूप हूँ', 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'। यह मंत्र पंच परमेष्ठि मंत्र का बीजरूप है। वे पाँचों परमगुरु पाँचों ही आत्मा सहज-स्वरूप हैं — जन्ममरण रहित।

54. मैं शरीरस्वरूप नहीं, पुरुष, स्त्रीस्वरूप नहीं, ऐसी मेरी अनादि की भ्रांति श्रीसद्गुरु ने टाली।

55. सच्चे का हाथ मिले बिना, अंधा मनुष्य गड्ढे में गिरे बिना सच्चे ठिकाने पर कैसे आ सकता है? सद्गुरु का ज्ञानप्रकाश चाहिए। 'स्वपर प्रकाशक ज्योतिस्वरूप वह यह आत्मा वह मैं।'

56. वह आत्मस्वरूप जिसमें प्रकट हुआ है उसे हृदयरूपी कैमरे में लेकर (भरकर) उसमें ही दृष्टि रखकर, उसे ही स्मरा जाय तो दृष्टि, मन, वाणी सब स्थिर हो जाय। इन तीनों की एकाग्रता साधी जाय तो लक्ष्यवेध हो। द्रव्यमन की मानसिक फिल्म निमित्त पाकर ज्ञान में झलके। पुरुषरूप में, स्त्रीरूप में भी मैं आत्मा हूँ यह मेरा-तेरा यह साथ ही देखने-जाननेवाले को भूल जाने से इष्टानिष्ट कल्पना उठती है, उसे पकड़ लिया, छोड़ने नहीं दिया।

57. आत्मसूर्य का प्रकाश कहाँ से आता है? मुख को पूर्व की ओर, अर्थात् ज्ञानी की ओर, घुमायें तो दिखाई दे। चेतन और चेतना के बीच आवरणों के पर्दे पड़ गए हैं। चेतना ढूंढती थी चेतनपिंड। चेतनमूर्ति कहाँ है वह सद्गुरुकृपा से समझ में आया।

58. चेतन प्राप्त हो जाने के बाद जन्ममृत्यु के दुःख टल जायें। संसार विषतुल्य दिखाई दे। चेतना तरसती है चेतन को मिलने हेतु। वह तड़प ऐसी चाहिए कि बीच के आवरण के पर्दे जलकर खाक-भस्मीभूत-हो जाय!

59. 'तुज विरह स्फुरतो नथी'— वह अग्नि यदि जला करे तो पर्दे जले। अग्नि की थोड़ी-सी गरमी रसोई करनेवाले को सहनी पड़े। उसे सहे बिना रसोई बन नहीं सकती। चेतन का अनुभव करने के लिए विरह की आग सहनी ही चाहिए। 'पियु पियु रटता पंछी बपैया।'

60. साधक जीव वह है कि जिसे सत्पुरुष का विरह ऐसा तड़पाता हो। तत्त्वचिंतक को तत्त्वज्ञान के लिए ऐसी तड़पन (वेदन) चाहिए। विरहानल में प्रवेश करनेवालों की आत्मानुभूति बढ़ती है। वहाँ प्रियतम का विस्मरण होता ही नहीं। अतः उनका स्मरण करने का कहाँ से रहे? प्रियतम का यदि वियोग तड़पाये तो भी स्मरण करना नहीं पड़ता। जहाँ विस्मरण ही नहीं! अपने प्रियतम के सिवा सारा जगत उसे विस्मृत हो जाता है।

61. निर्जल रणभूमि में-रेगिस्तान में- तृषा लगी है पिपासु 'पानी पानी' ऐसा मुँह से रटता नहीं है, परंतु उसे पानी का स्मरण रहा ही करता है। ऐसी पिपासा अमृतपान से जागती ही नहीं है।
'जेहने पिपासा हो अमृत पाननी रे, किम भांजे भगवंत।
(जिसे अमृतपान की पिपासा हो, किस प्रकार वह मिट सकती है?)

62. कामाग्नि में अनंत संसार है। पति में सुरता लगी रहती है वैसे प्रियमें प्रिय प्रियतम पूज्य श्रीसत्पुरुष को हृदय में स्थिर कर 'परप्रेमप्रवाह' बहायें। ऐसी सुरता लगायें। उससे धीरे धीरे एकनिष्ठा बढ़ती है।

63. विरहाग्नि अनंत आत्मऐश्वर्य को व्यक्त करनेवाली एक शक्ति है। काँच साफ-स्वच्छ न हो-तो पदार्थ का प्रतिबिंब ठीक से नहीं पड़ता। वैसे ही हृदयरूपी काँच अश्रुजल से अगर धुलकर साफ़ बने तो उसमें भगवान का प्रतिबिंब पड़े। सत्पुरुष को निर्मल अंतःकरण में प्रतिष्ठित करके देखते हुए वे आत्मा को देखते हैं। उसमें वे मोक्षमार्ग बतलाते हैं।

64. मार्ग में चलते हुए रस्ता भूल गए। परंतु भगवान में ही शरणबुद्धि इसलिए हृदय में भय नहीं। 'हाज़िर होते हैं भगवान स्वयं मार्ग बतलाए, ऐसे अनुभव भक्तों को होते हैं आत्मा की शक्तियाँ प्रकट होती हैं, परंतु वह भक्तात्मा तो अखंड शरणागत भाव ही अनुभव करता है। भगवान ही सबकुछ कर रहे हैं ऐसी श्रद्धा करके, मानकर, निर्मोही बना रहता है, निर्मानी बना रहता है।

65. 'एक भव में नहीं, परंतु एक पल में प्रकटे'। इधरउधर वृत्ति है वह स्थिर हो जाय और आत्मा के सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिए ऐसे सीधे मार्ग पर दौड़े जाय उसे मिलते हैं।

66. कर्म के उदय को आत्मा से भिन्न जाने वह ज्ञानी। उदय को अभिन्न जाने वह अज्ञानी। गजसुकुमार सोचते हैं, 'जो जलता है वह मेरा नहीं रे, अक्षय चिन्मय तत्त्व प्रभाव रे!'

67. परम कृपालु देव की नारियेल के गोले जैसी स्थिति!! अप्रमत्त गुणस्थानक पर कैसी स्थिति!! 'एक क्षण भी अप्रमत्तधारा को नहीं छोड़ता मन', 'देहधारी हैं या नहीं?' आत्मा - केवल आत्मा ही!!!

68. देखना और जानना यह आत्मा का गुण। गुप्ति: स्वपर प्रकाश में वास। 'अप्रमत्त शूरवीर बन!' कृपालुदेव के वचन शूरवीर हैं। उस कर्म के

कचरे से स्वयं दूर से कर्म को चुगते किए। अप्रमत्त बन। उद्दंड सांड कचरे के ढेर पर चढ़ कर और इस प्रकार से शौर्य बताता है। कचरे को उछाल कर अपने सिर पर डलता है। संसारी जीव ऐसा करते हैं।

69. प्रत्येक व्यक्ति अपने दोष देखे। प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार दूसरा व्यक्ति सुरक्षित रखे। हरएक अपनी जिम्मेदारी निभाये। तो संप बना रहे।

70. हमने परम कृपालु भगवान जैसे का शरण ग्रहण किया है, तो सोचें कि हमारी क्या जिम्मेदारी है? उस भगवान के आश्रय में ट्रस्टी बनकर सारा ही तन, मन, धन सम्हालें। हम उनके मालिक नहीं, ट्रस्टी हैं। शरीर के मालिक नहीं, ट्रस्टी हैं। मन के मालिक नहीं, ट्रस्टी हैं। धन के मालिक नहीं, ट्रस्टी हैं। ट्रस्टी मालिक बन नहीं सकता, भोग नहीं कर सकता, ट्रस्टी हैं और वे भी कृपालुदेव ने नियुक्त किए हुए!

71. 'अभयरत्न आत्मा हूँ' यह दृष्टि सृजित करें। क्या सारे प्राणियों में त्रिलोकीनाथ भगवान आत्मा नहीं है? "है"। ज्ञानदृष्टि से सभी में आत्मा को देखें। भक्त की दृष्टि से भगवान देखें। 'सर्वात्म में सम दृष्टि दो' — इस वचन को हृदय पर लिखें। यह दृष्टि उद्भुत हो तो विवेक का उदय हो। उसके प्रकाश में सबकुछ योग्य ही दिखाई देगा।

72. प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की जाँच करे। यह जाँच करने हेतु 'हे प्रभु! हे प्रभु!' के बीस दोहे हैं। उनमें बत्तीस मुख्य दोषों का वर्णन है। उन दोषों का नित्य चिंतन करें।

73. आठ दृष्टि की सज्झाय थर्मोमीटर है। उसमें दोष किस प्रकार जावें और उनके जाने से आत्मा में कैसे कैसे गुण आविर्भाव प्राप्त करें वह सारा दर्शित किया है। आखिरी केवलदशा प्राप्त हो वहाँ तक का बतलाया है।

74. व्यर्थ चिंतन छोड़ देकर कार्यकारी ऐसा स्वस्वरूप संबंधित चिंतन करें तो वह सार्थक है।

75. जहाँ ये तीन वस्तुएँ न हों वहाँ आत्मज्ञान होता है: १ व्यर्थचिंतन २. व्यर्थ संकल्प ३. व्यर्थ चेष्टा।

76. मेरी अपनी जिम्मेदारी क्या है? दूसरों के प्रति मेरा फर्ज़ है वह मैं अदा करता हूँ? परम कृपालुदेव की मुझे जो आज्ञाएँ है उनका मैं पालन करता हूँ? यह अगर होगा तो दूसरा सब ठीक हो जाएगा।

77. ज्ञानीकी आज्ञाओं का पालन न होता हो तो उसका खेद रखें। शक्ति गोपित नहीं करेंगे तो एक ही जन्म में अनेक जन्मों की नुकसानी की पूर्ति हो जाएगी। वह महान लाभ है।

78. दुःख के समय त्राहि त्राहि पुकारते देहधारी जिस अदृश्य शक्ति की सहायता माँगते हैं वह अदृश्य शक्ति घट में है। उसका साक्षात्कार हो, अर्थात परमात्मा का घट में मिलना हो, तब दुःख दूर होते हैं। दुःख का क्षय होता है। उसके लिए चेतन को परभाव से लौटाकर घट में स्थापित करना।

79. अनादिकाल के अभ्यास से हमारी वासनाएँ इतनी प्रबल है कि उनमें से बाहर निकलना विकट है। उसमें मुख्य कारण मन है। मन को भटकने की आदत है और हमने स्वयं ही उसे ऐसी आदत डाली है। मन यह उल्टी चाल का घोड़ा है।

80. पारसमणि में और संत में महान अंतर है, दूरी है। पारस तो लोहे को सुवर्ण बनाता है, परंतु संत तो जीव को अपने जैसा जीव संत बनाता है।

81. जिसे ऐश्वर्य प्राप्त करना है उसे वैसे ऐश्वर्यवान पुरुष के पास जाना चाहिए। विद्यार्थी और विद्वान की भाँति। उपादान आत्मा और निमित्त परमात्मा का।

82. भौतिक सुख हेतु जो कुछ धार्मिक साधनाएँ किसी भी प्रकार की की जायें तो वे घास के लिए बीज बोने के बराबर है।

83. आत्मसाधना यह भी कला है, और वह उसके कलाधर के

पास से प्राप्त होती है। 'पंच परमेष्ठि मंत्रस्मरण संसार को विस्मरण करने के लिए प्रबल साधन है।' 'द्रव्य से, काल से, क्षेत्र से और भाव से चेतना का चेतन में स्वरूपस्थ होना उसे मोक्ष कहते है।'

~~८४~~ 84. परिग्रह के पत्थरों को भरकर जीव निजानंद का नाश करता है। निज धन नष्ट होता है। स्वरूप के सिवा जो कुछ है वह सारे परिग्रह है। उनके छूटने पर ही असंगता प्राप्त होती है।

~~८५~~ 85. श्री सद्गुरुकृपा से पँचविषय से उदासीन होकर 'चेतना' का अपने प्रदेश में स्थिर हो जाना वह सम्यक्स्वरूप में स्थिति है। और वहाँ से हटना ही नहीं और सर्व भाव से छूटकर केवल आत्मा में स्थिर हो जाना वह मोक्ष है। अनंता-नुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ ये परमणतामें से हटने नहीं देते हैं। स्वरूप का भान (बोध) होने में महाविघ्न हैं।

~~८६~~ 86. ज्ञानी के वचन समझने हेतु सतत प्रयत्नशील रहना, परंतु अश्रद्धा करना नहीं। अंतरंग परिणाम पर ही बंध-मोक्ष की स्थिति है। अपने स्वरूप में यदि दृष्टि दें और टिके रहें, तो देह के साथ, उसकी क्रिया के साथ और उसके क्रियाफल के साथ कुछ संबंध नहीं है। 'गजसुकुमार की भाँति।'

~~८७~~ 87. इष्टानिष्ट कल्पना के द्वारा, रागद्वेष के द्वारा आत्मा पर मिट्टी के स्तर के स्तर (कर्म का कचरा) घनीभूत हो जाते हैं (जम जाते हैं) और तुंबड़े के दृष्टांत से वे नीचे जाते हैं। उस मिट्टी के लेप-स्तर जैसे जैसे कम होते हैं, वैसे वैसे वह तुंबड़ा ऊपर आता है। उसी प्रकार सद्गुरुकृपा से और आत्मलक्ष्य से पुरुषार्थ हो तो आठों प्रकार के कर्म-बंध से छूटकर जीव ऊँचा आता है।

~~८८~~ 88. जो इच्छा करने योग्य नहीं ही है उसकी यह मूढ़ जीव इच्छा कर रहा है, और जो ईच्छा करने योग्य है वह संग के योग से चूक गया है।

८९. मैं और मेरापन टालना है तो उपयोग को अंतर में स्थिर करके टिकना चाहिए। मनुष्यत्व आत्मा का साधन है। उसके द्वारा, अर्थात् मनुष्यत्व के द्वारा ज्ञानी की वाणी समझी जा सकती है। और वह आत्मोपयोगी कार्यकारी होती है।

९०. श्री सद्गुरुशरण वह सफलता की कुंजी है। निर्बल का बल है। उपसर्ग सहन करे तो विकास होता है और सहन न करे तो पतन होता है।

९१. ज्ञानियों के संग के अतिरिक्त का शेष संग जो है वह बंधन-कारक है, बंधन है।

९२. श्री सद्गुरु की शरण जाने के पश्चात् जन्ममरण नहीं रहता है।

९३. जड़ में महिमाबुद्धि है तब तक प्रभु में महिमाबुद्धि नहीं आती, एकाग्रता नहीं आती। चंचल परिणाम करके साधना को स्थिर नहीं किया जा सकता। पाप का नाश करनेवाले ऐसे साधुपुरुष का संग रहना चाहिए और उनके अभाव से ग्रंथ का आधार लेना चाहिए।

गुरुपूर्णिमा

९४. सजीवन मूर्ति : जिस के घर में चेतन दीपक सदैव प्रकट है, आत्मज्योति झगमगा रही है वह है सजीवन मूर्ति।

९५. जिस रास्ते (पर) नहीं जाना है उसका भी ज्ञान चाहिए, और जिस रास्ते (पर) जाना है उसका भी ज्ञान चाहिए। नहीं जाना है वह ज्ञान निषेधरूप है और जाना है वह ज्ञान विधिरूप है।

९६. जिस शब्द के माध्यम से अपनी आत्मा का भान हो उसे कहते हैं मंत्र। आत्मा का बीज है। श्री सद्गुरु वह बीज बोते हैं, धैर्य रखना चाहिए।

97
९७. जिस प्रकार विश्वास के आधार पर किसान लाखों मण अनाज धूल में मिलाते हैं - बोते हैं, उसी प्रकार धैर्य और दृढ़ विश्वास रखना चाहिए श्री सद्गुरु पर। तो कार्य बनता है।

98
९८. आत्मभावना की यह रखनेवाला अनुभवियों का जो वचन है - 'मंत्र' कहा जाता है। आत्मभावना और देहभावना के आधार पर मोक्ष और संसार का आधार है।

99
९९. श्री सद्गुरु के पास जो बीज है उसके बिना आध्यात्मिक खेती नहीं होती। सद्गुरु का जो अवलंबन है उपदेश का, वही काफी है। इसमें साधक और बाधक दोनों कारण हैं। साधक कारणों का स्वीकार करके चलना और बाधक की तरफ नज़र भी नहीं करना।

100
१००. व्यवहारमार्ग में जो दंभ आ गया है, आ रहा है वह आध्यात्मिक पतन से आ रहा है। हम यदि मध्यस्थ भाव से पक्षपातरहित खोज करें तो महात्मा मिल सकते हैं। "मुमुक्षु के नेत्र महात्मा को परख लेते हैं।"

101
१०१. सजीवन बीज : सत्पुरुष की स्वयं की अनुभववाणी।
वंध्य बीज : अनुभवरहित वाणी।
सत्पुरुष इतने दयालु हैं कि यदि विनयभाव से इनके चरण में जायें तो अनंत कृपा करके बोध-बीज देते हैं। सत्पुरुष के पहचानने की परखना बाह्य दृष्टि का काम नहीं है। अपूर्व अंतर्दृष्टि का विषय है। अमूल्य निधि की पहचान नहीं है, इसलिए कदर भी नहीं है।

102
१०२. गुरुपूर्णिमा का दिन यह बोध-बीज खरीदने का दिन है। सद्गुरु के सन्मुख होकर विनयभक्ति से यह बीज खरीदा जाता है। लेने की भी कला है। यदि निश्चय है तो सारी पृथ्वी में से भी मिल सकता है।
जाग रे जाग, प्रमादी!
मोहनींद को छोड़ रे!"

गुरुपूर्णिमा पद

१०३/२०३

"गुरुपूनम उत्तम क्षणे करूँ आत्मसमर्पण आज रे,
आपनां चरणे नमी रे!"

चरणे नमी देहमान वमी, रमी आज्ञाधर्मे गुरुराज रे-- आपना
सर्वज्ञानी सुर आत्मसाक्षीए, शरणुं स्वीकारूँ शिरताज रे-- आपना
नाथ मारो एक तुं हि ज आजथी, परम कृपाळु गुरुराज रे-- आपना
पारिवारिक सम बीजा बधाथी, वर्तीश तजी लोकलाज रे-- आपना
विचारभेद छतां न करूँ प्रीतिभेद, धरी अद्वेष गुणराज रे-- आपना
सहजात्मस्वरूप परमगुरु मंत्र, केवळ बीज भवपाज रे --- आपना
मारा हृदयमां आपे वावी मने, कर्यो अहो! रंकथी राय रे-- आपना
अहो! अहो! उपकार ए आपनो, भूलुं कदी ना महाराज रे ---आपना
आपकृपाथी निजपद पाम्यो, सहजानंद स्वराज रे --- आपना

१०४/२०४. सही रूप में अपने आपका स्वरूप जिन्होंने जान लिया है उनकी शरण ले लेना विश्वासपूर्वक। यदि हम भी वास्तविक पात्र हैं तो अवश्य आध्यात्मिक खेती हो जाएगी। मोक्षमार्ग के दाता, उपदेष्टा दुर्लभ हैं। यदि वे सुलभ होते तो मोक्ष भी सुलभ हो जाता। अनन्त काल से दुर्लभ स्थिति है।

१०५/२०५. ज्ञानियों का यह आदेश है कि आत्मार्थ के अतिरिक्त कोई इच्छा न करो। सब मत-मताग्रह छोड़ कर सद्गुरु की आज्ञानुसार अपनी आत्मा का साक्षात्कार करने का पुरुषार्थ करो। अपनी आत्मा को जो समभाव में रखेगा वह सही मोक्ष पायेगा, मुक्त होगा। जो निकट में निकट मुक्तिगामी जीव है - एकावतारी - ऐसे पुरुष की गाड़ी में बैठ जाना चाहिए।

१०६/२०६. सत्पुरुष की आज्ञा और मुद्रा में अपनी चित्तवृत्ति को रोकना ही शरणभाव है। दर्शनगुण निर्विकल्प है। एक वस्तु में चित्तवृत्ति की स्थिरता। इसी तरह सत्पुरुष की मुद्रा में चित्त की स्थिरता हो जाना यह है एकाग्रता।

107 २०७. जिसे पार उतरना है उसे अपने मनमाने साधनों का आग्रह नहीं होना चाहिए, बल्कि जिन्होंने आत्मस्थिति प्राप्त की है और अभी साधनसामग्री नहीं मिलती है उन परम ज्ञानी की मूर्ति को हृदयमंदिर में प्रतिष्ठित करना चाहिए। निरन्तर उनका स्मरण होना चाहिए। वीतरागस्वभाव और आत्मभाव को स्थिर कर के संकल्प-विकल्परहित, वचनानुसार सब कुछ करें। सद्गुरु की अखण्ड आराधना भवच्छेद करती है।

108 २०८. सद्गुरु के चरण में मन, वाणी और आत्मा लगा कर सजीवन मूर्ति का स्मरण किया जावे तो इन दोनों का लाभ होता है।

109 २०९. पर वस्तु में उठनेवाले शुभाशुभ भावों को जिन्होंने त्याग दिया है वे मुनिराज सुखी हैं।

110 २१०. जो विषरूप यानि जहररूप चीज है उसके लिए दिनरात दौड़ता फिरता है, जो बिना हक की चीज पर हक जमाता है और वह भी स्मशान की चीज पर, वह धर्म नहीं कर सकता, धतिंग कर सकता है। शरीर में आत्मबुद्धि रख कर कोई धर्म प्राप्त नहीं कर पाता।

111 २११. धर्म है वहाँ कर्म नहीं है और जहाँ कर्म है वहाँ धर्म नहीं है।

112 २१२. धर्म की मंजिल पर पहुँचने के लिए पुण्यरूप सीढ़ी काम आती है। उसकी आवश्यकता है। लेकिन पुण्यरूपी सीढ़ी पर ठहर नहीं जाना है। ऊपर चढ़ना है।

113 २१३. असत्संग और असत् प्रसंगों से जीव का आत्मपरिणमन नहीं होता है। असत् प्रसंग से बचने के लिए आरम्भ परिग्रह को मन्द करना चाहिए। सत्पुरुष ही परिग्रहबुद्धि को मिटा सकते हैं।

114. ११४. संत के प्रत्येक वाक्य में अनन्त आगम निहित हैं, परन्तु वह अनन्तता जीव को समझ में नहीं आती है।

115. ११५. जिस ज्ञान को दुःख की कसौटी में नहीं कसा है वह समाधिमरण के कार्य में काम नहीं आता।

116. ११६. देखना गलत है इसलिए समझना भी गलत है और आचरण भी गलत है। देहादि में जो आत्मबुद्धि है वह विपर्यास बुद्धि है। परिग्रहप्रेम - अनन्तानुबंधी लोभ। अपने दोषों को छुपाना अनन्तानुबंधी माया, अपने मन के मते चलना, अनन्तानुबंधी मान। सन्मार्गदर्शकों और उनके बोध पर निरादर बुद्धि - अनन्तानुबंधी क्रोध। सत्संगप्रेम ही (न दोषों को और) परिग्रहप्रेम को दूर करता है।

117. ११७. जब सद्गुरु के प्रति प्रबल प्रेम हो जाय तब अनन्तानुबंधी क्रोध घटता है और परिणामस्वरूप सभी कर्म घटने लगते हैं।

118. ११८. जहाँ चेतना आत्मा के प्रति झुकी रहती है वहाँ आत्मपरिणति है। जहाँ तुर्यावस्था है वहाँ सम्पूर्ण ज्ञान है। जब तक पूर्ण रूप से स्वावलम्बी दशा प्राप्त न हो जाय तब तक सद्गुरु का बोध आवश्यक है। अनुभूति-धारा से नीचे उतरना ही प्रमाद है।

119. ११९. मार्गानुसारितावाले को आत्मदर्शन होना सम्भव है। यह मानवजीवन मार्गानुसारिता हेतु है। मन को आत्मघर में बसानेवाला ही मनुष्य है।

120. १२०. मुनि की तीन श्रेणी : सामान्य मुनि, उपाध्याय मुनि और आचार्य मुनि। आचार्यलब्धि सम्पन्न हों उन्हें आचार्य कहा जाता है।
श्री सुधर्मा स्वामी केवली प्रथम युगप्रधान थे।

121. १२१. युगप्रधान पुरुष क्षायिक सम्यक् दृष्टा होते हैं, बीजकेवली होते हैं। इन्द्र भी उनकी तीर्थंकर की

की तरह आराधना करते हैं।

122. १२२. दिशासन्मुख करना उपदेशक का कार्य है। सिद्धान्तबोध का जन्म ही उपदेशबोध के जरिये हो सकता है, वैराग्य और उपशम जब तक नहीं है तब तक देहात्मबुद्धि दूर नहीं हो सकती। उसको हटाने के लिए उपदेश की प्रथम आवश्यकता है। उसके बाद सिद्धान्तबोध कार्यकारी होता है। स्वद्रव्य और परद्रव्य से संबंधित मन में जो विकल्प उठते हैं, उन्हें शान्त किये बिना सिद्धान्तबोध का वास्तविक लाभ नहीं होता।

123. १२३. जब तक श्री सद्गुरु के पास से सम्यक् ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है तब तक सारा अज्ञान है। जिस ज्ञान की कृपा से दर्शन सम्यग् होता है वह ज्ञान सद्गुरुकृपा से प्राप्त होता है और दर्शन शुद्ध होता है।

124. १२४. प्रत्यक्ष वाणी भवआगम है।
पुस्तकरूप वह स्थापनाआगम है।
कंठस्थ होते हुए भी उपयोग में न आये वह द्रव्यआगम। उसकी संज्ञा है नामआगम।

125. १२५. इच्छा की अपूर्ति में जी सकते हैं। आवश्यकता की अपूर्ति में जीना असम्भव है।

126. १२६. (पद: स्वकंठ में गाया हुआ)
अवसर आव्यो हाथ अणमोल
झटपट करी ले आत्मशुद्धि तुं, सद्गुरु शरणुं खोळ.. अवसर
लोकलाज तुं शुं धरे मूरख, कां करे टालमटोळ ?.. अवसर
तर्कवितर्क ने निज जन जडधन, देहभान सौ छोड... अवसर
परम कृपाळु शरणे था तुं, भक्तिरसे तरबोळ... अवसर
परम गुरु सहजात्मस्वरूप तुं, रट रट मन्त्र अमोल.. अवसर
आत्मसिद्धिनो मार्ग खरो ए, सहजानन्द रंगरोळ.. अवसर.

27. २२७. (पद : स्वकंठ में गाया हुआ)

सफळ थयुं भव म्हारुं हो ... कृपाळु देव !
पामी शरण तमारुं हो ... कृपाळु देव !
कळीकाळे आ जम्बु भरते देह धर्यो निज पर हित शरते
टाळ्युं मोह अंधारुं हो ... कृपाळु देव !
धर्मढोंगने दूर हटावी, आत्मधर्मनी ज्योत जगावी
कर्युं चेतन-जड न्यारुं हो ... कृपाळु देव !
सम्यग्दर्शन ज्ञानरमणता, त्रिविध कर्मनी टाळी ममता
सहजानन्द लह्युं प्यारुं हो ... कृपाळु देव !

28. २२८. विनय = विशिष्ट पद, सद्गुरु के पास जो ले जाय वह विनय।
विवेक = जड चेतन को भिन्नरूप में जानना यह है विवेक।
विरक्ति = वैराग्य, विज्ञानधन = आत्मधन, आत्मवैभव
यह सद्गुरुकृपा से सम्भव होता है।

29. २२९. नास्तिक धर्म के माध्यम से भूल बताई जाती है और आस्तिक धर्म के माध्यम से आराधना की जाती है।

30. २३०. जिनकी तर्कशक्ति अपने समय में अद्भुत है वे इस समय के युगप्रधान हैं।

31. २३१. रूपीमार्ग में भी मार्गदर्शक की आवश्यकता है तो अरूपी मार्ग में नहीं है क्या ?

32. २३२. [illegible] किसी भी वस्तु को समझना है तो कार्यकारण न्याय से उसे समझना चाहिए, तब ही वह समझ में आती है। कारण-सामग्री से उपादान-सामग्री कार्यरूपता को धारण करती है।

133. २३३. निमित्त-सामग्री : देव, गुरु, धर्म – इन पर श्रद्धा रख कर कार्य करें। जीव प्रेरकतत्त्व है।

134. २३४. शुभाशुभ कल्पना न उठने देना धर्म है |
135 २३५. देवगुरुपद - धर्म प्राप्त करने हेतु यह साधन है |
136. २३६. शरीर और आत्मा को हम एकरूप मानते हैं जो ज्ञानियों ने अनुभव से अलग देखा है | शरीर का वियोग मृत्यु है |
137. २३७. भिन्नता के भान से मृत्यु का भय चला जाता है, टीकता नहीं |
138. २३८. ज्ञान यदि फिल्टर हो गया तो आयुबँध कब और कैसे हुआ इसका पता लग जाता है |
139. २३९. 'सर्वज्ञकेवली - पूर्ण अवस्था' 'बीजकेवली - आत्मज्ञानी सत्पुरुष |

'भगवान अर्थात् ज्ञानवान'

140. २४०. भवरोग : बार बार जन्म लेना और बार बार मरना - यह है भवरोग | स्थाई शान्ति का कभी अनुभव नहीं होता | केवल अशान्ति का ही अनुभव होता है | आधि, व्याधि, उपाधि में आत्मा त्रिविध तापाग्नि से संतप्त है और यह भवरोग है |
141. २४१. 'श्री सद्गुरु भवरोग को मिटाने के लिए उत्कृष्ट वैद्य हैं | स्वयं शान्त दशा में रहते हैं शान्ति स्वरूप हैं | केवल दृष्टि की भूल है | देखनेवाले को देखो |
142. २४२. भवरोग की औषधि है उपदेशबोध | इस औषधि को खाये बिना, हज़म किये बिना भवरोग मिटता नहीं है |
143. २४३. आत्मदर्शन के लिए मन को स्थिर रखना अनिवार्य है | अच्छी बुरी कल्पना न करना यह संवरक्रिया है और यह मन की स्थिरता के बिना नहीं होती | स्थिरता के बिना आत्मदर्शन नहीं हो पाता |
144. २४४. देवतत्त्व के प्रति इशारा करते हुए अपनी आत्मा का स्वरूप श्रीसद्गुरु दिखाते हैं |
145. २४५. अपने आपकी शुद्धता की जो अनुभूति है वह है अव्याबाध सुख | आत्मा स्वयं अव्याबाध सुखस्वरूप है | अपने आपका भान छूट न जाय यह समकित की क्रिया है - 'समकितरूप क्रिया" |

146. २४६. कहाँ से आया है इसका पता नहीं है और कहाँ जाना है इसका निर्णय नहीं है, वे पागल हैं।

147. २४७. अपने आपका भान रखना यह तीर्थंकरों की पाठशाला का पहला पाठ है। इसे दृढ़ करना होगा कि मैं आत्मा हूँ। और इस भान के साथ सभी क्रियाएँ सफल होंगी, अन्यथा निष्फल अर्थात् मोक्षप्राप्ति के लिए काम आती नहीं। 'धर्म याने भान की धरपकड़'।

148. २४८. आत्मभानवाले रागद्वेष की चक्की में पिसते नहीं। सद्गुरु की शिक्षा के द्वारा ही भ्रम मिट सकता है।

149. २४९. यदि आत्मा का भान न आया तो सत्संग में रहे या असत्संग में- दोनों बराबर है। सत्संग से ही आत्मा का भान होता है।

150. २५०. विश्वास रखना यह है निमित्तरूप समकित और आत्मा का सतत भान रखना यह है परमार्थ समकित।

151. २५१. सुख आत्मखजाने में है और उस पर हमारा हक है लेकिन शाता-अशाता के कर्मों का ढेर जो लगा है उसको हटाना पड़ेगा और फिर अपना सुख आपको मिलेगा। स्वाधीनता ही सुख का लक्षण है और पराधीनता ही दुःख का लक्षण है। जब तक आँखें खुली हैं तब तक मुसीबत है। मुसीबत तो खड़ी ही है और यही संसार है। ज्यादा से ज्यादा ये परिस्थितियाँ शरीर तक हैं। शुभाशुभ कल्पना को दे दो छुट्टी...।

152. २५२. अगर अंजन करनेवाले श्री सद्गुरु मिलें तो आत्मज्योति झलकती है और आत्मदर्शन होता है। अपना कर्तव्य है आत्मा का भान रखना, इष्टानिष्ट कल्पना नहीं उठने देना। उसको ही धर्म कहते हैं। शुभाशुभ कल्पना का न उठना ही शान्ति है।

153. २५३. तीर्थंकरों ने वेश धारण नहीं किया लेकिन जो वेश था उसका परित्याग किया और जो आयुकर्म तक त्याग नहीं हो सकता उसको रख लिया। परमात्म एक पद है। ज्ञाननिष्ठा से होता है आत्मदर्शन का क्रम।

154. २५४. उपसर्ग का समय आये ऐसी स्थिति में यदि हम सत्संग को पा चुके हैं तो देहभान को हटा कर आत्मभाव में स्थिर हो जायें तो एक अपूर्व मौका प्राप्त हो कर नये नये अनुभव होते हैं। ऐसे नहीं रहा जाता तो परमात्मा को

161 २६१. अखिल विश्व में अनादि काल से आज तक यह मूढ़ जीव अपूर्व को प्राप्त नहीं कर सका है। उसने जो कुछ प्राप्त किया है वह सब पूर्वानुपूर्व है। अपूर्व पुरुष की अपूर्व वाणी की अपूर्व वर्षा के बिना किसीको भी वह अपूर्व स्वरूप संप्राप्त हुआ नहीं है, होता नहीं है और होनेवाला नहीं है। अपूर्व वाणी की अपूर्व वर्षा में भीगे हुए हृदय में वह नूतन अथवा अपूर्व और आश्चर्यकारक स्वरूप प्रगट होता है जिससे सन्तोष एवं प्रसन्नता का अनुभव होता है।

162 २६२. यहाँ आने के पश्चात् इस आत्मा को एक ऐसा निश्चय हुआ है कि इस देह को छोड़ कर यह आत्मा वहीं पहुँचेगी जहाँ कृपाळु देव हैं। बीच में कहीं भी भटकना मिट गया। अब उस पद के लिए अधिक पुरुषार्थ ही करना है - करते रहना है। जगत के प्रति देखना ही नहीं है। समझ कर समा जाना है। केवल ज्ञानियों का ही अवलम्बन ले कर कमर कस कर लगे रहना है। यद्यपि उस समझ के अनुसार पुरुषार्थ हो नहीं रहा है वह भाग्य की मन्दता है, फिर भी भटकने का भय नहीं है। कृपाळु की कृपा समझनी चाहिए कि उनका आश्रय ले कर और निश्चय के द्वारा प्रत्येक जीव इस काल में निकट भव्य बन सकता है।

163 २६३. उत्कृष्ट भाव से आश्रय और निश्चय होने पर वर्तमान देह का त्याग कर के उन्हीं के चरणों को सम्प्राप्त किया जा सकता है। अतः जिन्हें शीघ्र पार उतरना है उन्हें तो अपने भावों में शीघ्रता रखनी है - त्वरा रखनी है। इस बाज़ार में धन की कमी या राजतंत्र बाधक नहीं बनता है। परिवार के कार्य भी बाधक नहीं हैं। <u>केवल परम पुरुष के प्रति अपना आश्रय और निश्चय अडोल रहना चाहिए।</u> दुनिया परिवर्तित होती रहे किन्तु अपना ज्ञानी के प्रति जो शरणभाव है उसमें किसी प्रकार का बदलाव न आये, किसी प्रकार का परिवर्तन न आये तो बेड़ा पार। परम कृपाळुदेव ने इस रहस्य की ही पुष्टि, सर्वत्र आलेखित की है। यही धर्म का राजमार्ग है। उसी मार्ग पर हम यथाशीघ्र आगे बढ़ें ऐसी शक्ति कृपाळु देव हमें सदा सर्वदा प्रदान करें।

ख्यातुम 'वीर के मार्ग पर तो वीर हो कर ही चलना सम्भव है।'

164 १६४. दिव्य चक्षु की प्राप्ति हेतु तो केवल दिव्य दृष्टिवाले सद्गुरु की ही सेवा अनिवार्य है। जो कोई व्यक्ति ऐसे सद्गुरु की चरणसेवा करता है वही आत्मसाक्षात्कार कर सकता है, अन्य कोई नहीं। अगर तुझे आत्मसाक्षात्कार की पिपासा है और उसे शान्त करने की आवश्यकता है तो उसके लिए यही रीत है, यही उपाय है।

~~१६४. दिव्य चक्षु की प्राप्ति हेतु केवल दिव्य दृष्टिवाले सद्गुरु की सेवा ही अनिवार्य है~~

165 १६५. गुरुगम के बिना आत्मप्राप्ति कभी किसीको हो ही नहीं सकती। यह मर्यादा कोई नयी नहीं, बल्कि अनादिकालिन है। इस मर्यादा के द्वारा ही, इस नियम का पालन कर के ही इस कलिकाल में भी अनेक पुरुषों ने इस अभंग वस्तु का अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार किया है। यह न तो कोरी कल्पना है, और न ही अतीन्द्रिय ज्ञान का मिथ्या मद। यह तो अनुभव कथन है।

166 १६६. जब तक तेरी अन्तर्दृष्टि खुली नहीं है तब तक भला तू मार्गदर्शक कैसे बन सकता है? क्योंकि तू स्वयं ही अंध है। अतः भाई! तू उपदेश देना छोड़ दे और उपदेश ग्रहण करना सीख। यह तेरा प्रथम कर्तव्य है। तू ज्ञानीजनों की देखादेखी मत कर क्योंकि ज्ञानियों की दुनिया इस समस्त अंधी दुनिया से भिन्न है, निराली है अतः तेरे लिए इसे देखना, इसका अनुभव करना सम्भव नहीं है। जब तक उस अत्यन्त अनुपम कृपा प्राप्त कर के आत्मलक्ष साधा नहीं है तब तक तेरी दृष्टि और चाल विपरीत दिशा में है। और तब तक तेरा तप, जप और व्रत आदि सर्व साधन केवल संसार परिभ्रमण के पोषक हैं, नाशक नहीं।

167. १६७. अगर तू कृपापात्र बनना चाहता है तो 'मन के मते' मन की इच्छानुसार दौड़ना छोड़ दे। अन्य सभी प्रतिबंधों को तोड़ कर किसी दृष्टिवान पुरुष के पीछे— सत्पुरुष के पीछे लग जा– उनका अनुसरण करने का प्रयास कर। यही तेरे लिए हितकर है अतः इसे मान्य कर।

168 १६८. भावमन का अभाव करके जो स्वभाव में स्थिर हुए, उन परमात्मस्वरूप परम कृपाळु श्रीमद् राजचन्द्र देव के चरणारविन्द में हे जीव! तू अपना भावमन अर्पण कर दे! तू स्वभाव में स्थिर हो जा!! क्यों कि स्वभाव में स्थिर हुए बिना तुझे स्वभान की प्राप्ति नहीं होगी, देहभान दूर नहीं होगा और अनन्त गर्भ (अनन्त जन्म-मरण) गलेंगे नहीं। अतः हे जीव! तू स्वयं पर दया करके उन परमकृपाळु के चरणों में भावमन अर्पण कर, विलम्ब मत कर।

169 १६९. काल अत्यन्त दुषम रूप में दिखाई देता है। मूल मार्ग की पकड़ विरले जीवों में दिखाई देती है। अन्यथा मूल पुरुष को केवल नाम से पकड़ कर 'मैं जानता हूँ' ऐसा माननेवाले ज्ञानीदशा का — स्वयं ज्ञानी हैं — ऐसा दावा करते हैं ऐसा देखा गया है।

170 १७०. सनत्कुमार चक्री की भाँति इस युग के अध्यात्म-चक्रवर्ती परम कृपाळु देव के शरीर में भी आधिदेव ने स्थिरता की। शरीर अस्थिपिंजर के समान बन गया फिर भी जिन्होंने अपनी आत्मा में नाममात्र की भी व्यथा का अनुभव न किया। अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होते हुए भी 'आत्मसिद्धि' के अतिरिक्त उन सिद्धियों का उपयोग अन्य किसी अभिप्राय से किया नहीं था। क्वचित् परार्थ हेतु श्री डुंगरशीभाई के अभिमान का नाश करने हेतु तथा टोकरशीभाई जैसे भक्तों को समाधि प्राप्त कराने हेतु आत्मऐश्वर्य का उपयोग किया, परन्तु स्वदेह हेतु सदैव निःस्पृह रहे। परम कृपाळु की आत्मनिष्ठा को रोमांचित भाव से पुनः पुनः नमस्कार हो --।

171 १७१. परम कृपाळु देव का आश्रय एवं दृढ निश्चय ग्रहण करके अखण्ड मंत्र स्मरण, अखण्ड आत्मलक्ष, अखण्ड आत्मप्रतीति, अखण्ड आत्मानुभूतिधारा की आराधना करें। अब जाग गये हैं तो उस धारा को ही दृढतापूर्वक पकड़ लो। ज्योति को जगाओ। इस अलौकिक मार्ग की महिमा अकथ्य है, तो फिर लिख

कर कैसे आलेखित कोई कर सके ? शुष्क ज्ञानी और क्रियाजड मनुष्यों में ऐसी क्षमता नहीं होती कि वे इस मधुरस को चख सके। केवल वागाडम्बर - वाणी का आडम्बर करने से इस रस की एक बुंद भी प्राप्त हो यह सम्भव नहीं।

172. १७२. स्मशान की राख की इस गठरी में (शरीर में) अपनापन मान कर उसके सुख में सुखी और उसके दुःख में दुःखी होकर भूतकाल में अनन्त बार इस आत्मा का क्षय किया। उनके अन्तःकरण में वास्तविक ज्ञान की एक चिनगारी भी प्रगट हुई नहीं। उसे प्रगट करने हेतु सच्ची लगन लगी ही नहीं है, लगाते भी नहीं है। तो फिर भवरोग से मुक्त होने की आशा करना ... भी व्यर्थ है। केवल बातें करने से कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। प्राप्ति के पूर्व तो अनेक परीक्षाओं में से गुजरना पड़ता है यह भूलना नहीं है।

173 १७३. परम कृपाळु की इस अमूल्य वाणी का जो भी परिचय करेगा उसके अन्तःकरण में अपूर्व आत्मजागृति प्रगट होगी और आत्महित विचार निश्चित् रूप से प्रस्फुटित होगा। इस काल में यह सद्‌गुरु प्रसाद महाभाग्य से प्राप्त हुआ है।

174 १७४. अगर परम कृपाळु का स्मरण और शरण अखण्ड रखेंगे, और आयुबंध का प्रसंग होगा तो स्पेश्यल ट्रेन का सीधा टिकट मिल जायेगा। बीच के जंक्शनों पर गाड़ी बदलनी नहीं पड़ेगी और किसी किसी स्थान में अर्थात् बीच में आनेवाले स्टेशनों पर व्यर्थ रुके रहना - समय गँवाना नहीं पड़ेगा। अनन्त भव कट जायें और एकावतारीदशा सिद्ध हो ऐसी कृपाळु की शरण में और स्मरण में शक्ति है। इसका माहात्म्य ही ऐसा है जिसे निकटभवि ही समझ सकेंगे।

175 १७५. एक एक सांस कितनी अमूल्य है उसे कैसे खर्च करना चाहिए यह चिन्तन प्रतिक्षण करना चाहिए। जिसके खर्च के समय जो आयुबंध हो वह सांस तो अत्यन्त मूल्यवान है जिससे भविष्य में प्राप्त होनेवाला स्थान निश्चित होता है। किस सांस पर आयुबंध होगा

इस बात का ज्ञान जिसे नहीं है उसे कितना सावधान रहना आवश्यक है यह सोचेंगे तो अपूर्व जागृति रहेगी।

176 १७६. जब मृत्युशैया पर सोयेंगे तब दुनियाभर की सम्पत्ति काम आनेवाली नहीं है, उसे साथ ले कर जा नहीं सकेंगे। ऐसी सत्य बात कहनेवाले इस दुनिया में बहुत कम मिलेंगे। वैसे हाँ जी हाँ करनेवालों की बातों से राजी (खुश) होनेवाला जीव पाजी (मूर्ख) बन कर बाजी हार जाता है। इस प्रकार खुश होने से आत्महित होनेवाला है ही नहीं ऐसा कृपालु देव कहते हैं। मैं रिद्धि आदि के कारण महान हूँ ऐसा अभिमान ज्ञानियों के पास से लेने योग्य जो लाभ है उससे मनुष्य को वंचित रखवाता है।

177 १७७. आत्मभान की पकड़ किये बिना चारा है ही नहीं। इस बात की सुदृढ़ धारणा का निरन्तर मनन करें। स्वप्नों की सुखडी (मिठाई) से भूख मिटनेवाली नहीं है। असली सुखडी तो परम कृपालु देव के साकार स्वरूप की हृदयमंदिर में स्थापना करने पर ही प्राप्त हो सकती है। तो उसमें प्रमाद किस लिए? इसलिए इस अटपटी खटपट को छोड़ कर झटपट - शीघ्रतापूर्वक हृदयमंदिर में परम कृपालु की स्थापना कर लो। बाह्य मंदिरों की प्रतिष्ठा अन्तरंग प्रतिष्ठाविधि को जानने-समझने हेतु केवल शिक्षारूप है। अगर उसे जीवन में न उतारा तो भवरोग दूर नहीं होगा। इस बात को हृदय में अंकित करके रखना चाहिए।

178 १७८. सत्संग में लीन हुए बिना सत्स्वरूप ऐसी अपनी आत्मा की पकड़ हो नहीं सकती और आत्मा को पकड़े बिना इस गोबर मिट्टी के देहदीवारों की भुलभुलैया में से जीव बाहर निकल नहीं सकता। जब साधक जीव सत्साधना में एकचित्त हो जाये तब उसकी दशा ऐसी हो जाये कि उसे बाह्य जगत का तो क्या, अपनी काया का भी भान न रहे। ऐसी दशावाला जीव सच्चा साधक बन कर समाधिमरण का अधिकारी बन सकता है।

(margin: गोबरमिट्टी)

179 २७९- देह को छोड़ कर जाने के समय जीव अगर अपनी वृत्ति देह के साथ - देह में ही छोड़ कर जाये तो वह अवगति को प्राप्त करता है। स्वयं भी पीड़ित होता है और अन्य लोगों को भी पीड़ा पहुँचाता है। जिन्हें अवगति और पीड़ा से बचने की इच्छा हो उन्हें तो मृत्यु के पूर्व ही देह से वृत्ति को असंग कर के उसे आत्मा में जोड़ कर स्थितिस्थापक दशा सिद्ध कर लेनी चाहिए कि जिस दशा में स्वयं की नहीं बल्कि संसार की ही मृत्यु हो जाये। जिस साधन से स्थितिस्थापक दशा प्राप्त हो वह साधन ही सत्साधन माना जा सकता है। वह सत्साधन जिसके संग के फलस्वरूप अपने अंग के अणुअणु में रम जाय वह संग ही सत्संग कहा जा सकता है। शेष सब तो मिट जानेवाले नश्वर रंग।

180. २८०. गोबर मिट्टी से निर्मित इस संसार में कब तक बंदी बन कर रहना है? हे जीव! अपने हित का विस्मरण कर के इस संसार के मोह के कारण कहाँ कहाँ भटकता रहा उसका विचार कर। कैसे कैसे शरीर में तू बंदी बना? उस शरीर को मैं (न कर) कैसे कैसे अनर्थ किये? अगर कुछ भी सार्थक काम किया हो तो उसका हिसाब बता, अंतःकरण में झाँक। प्रकाश कर के देख। अन्धकार में हिसाब करना सम्भव नहीं। फिर भी अगर कुछ हिसाब करने का प्रयत्न किया हो तो प्रकाश में उसे जाँचने से ये सारे हिसाब गलत सिद्ध होंगे। अतः हे जीव! इन सारी खटपटों को छोड़ कर शीघ्र अपने हृदयमंदिर में ज्योति जगा कर अपने हिसाब की जाँच कर।

181 २८१. देहगेह (देहरूपी गृह) का स्नेह - ममत्व संसार का परिभ्रमण कराता है, जब कि सत्संग का स्नेह उससे बचाता है। अतः किसी भी प्रकार से सत्संग में ही निवास की कामना करना। निष्ठापूर्वक सत्संग की उपासना करना

देहाध्यास को दूर कर स्वरूप में ही तन्मय रहना। अन्यथा जीवन व्यर्थ है।

182 १८२. प्रश्न:

क्या माया की मोहजाल और बन्धन ऐसे हैं कि जिनसे मुक्त होना अति कठिन है?

उत्तर:- आपके समान वयोवृद्ध मुमुक्षु के हृदय में ऐसा निर्णय हो यह आश्चर्य की बात अथवा इस कलियुग में केवली के अंतेवासी के लिए अच्छेरुं (आश्चर्य) माना जाना चाहिए! ऐसी कायरता कृपाळु देव के आश्रितों के लिए किसी भी प्रकार योग्य नहीं है। जहाँ शरीर भी छूटनेवाला है वहाँ इस काया की माया कहाँ तक रह सकेगी? जिसने ज्ञानी पुरुष के दर्शन किये हैं उसे यह जड़ धन इत्यादि पृथ्वी के विकाररूप ही तो भासित होगा। फिर भी यदि ऐसा न लगे तो उसने ज्ञानी पुरुष के दर्शन किये हैं ऐसा कैसे मान सकते हैं?

183 १८३. देह के हेतु अनंत बार आत्मा का क्षय किया, परन्तु अब आत्मा के हेतु ही देह का क्षय करना है ऐसा निर्णय प्रवर्तमान है। इस कारण से आत्मा का स्मरण, ध्यान, प्रतीति, लक्ष और अनुभूति की अखंडितता साधने के पुरुषार्थ में ही तीनों योग की प्रवृत्ति करते करते देह छूटे तो भी उसकी चिन्ता न हो ऐसी सहज प्रकृति बनती जा रही है। शाता और अशाता दोनों वेदनीय कर्म की दोनों अवस्थाओं को अस्पश्य समझ कर उसके प्रति उदासीन रह कर केवल आत्मसमाधि मार्ग में एकचित्त रहना, उसके अतिरिक्त एक रोम में भी अन्य इच्छा को जागने न देना, तथारूप प्रयत्न करते ही रहना ऐसा निश्चयभाव हृदय को फूल के समान बोझ रहित रख रहा है। और यही श्री परमकृपाळु की परम कृपा है ऐसी प्रतीति हो रही है। जय हो परम कृपाळु देव की!!!

184 १८४. शाता का लालच अत्यंत क्रूर है जिसके कारण जीव शाता का भिखारी बन जाता है और आत्मवैभव के ज्ञानभान को प्रस्फुटित नहीं कर सकता है। जिस आत्मवैभव के समक्ष सम्पूर्ण विश्व को

जड वैभव विष्ठा तुल्य ही है वह आत्मवैभव अपने अन्तःकरण में ही स्थित होते हुए भी उसकी उपेक्षा करते हुए - उसको अनदेखा करते हुए, विषतुल्य बाह्य विषयवन में विषयों की अनुकूलता प्राप्त करने तथा विषयों की प्राप्ति के बाद उसमें ही आसक्त रहने के कारण अनन्तगुना विशिष्ट अशान्ति का अनुभव करना पड़ता है, फिर भी जीव शाता का लालच छोड़ने के लिए तैयार नहीं है यही उसकी मूढ़ता बहुल-संसारी दशा सिद्ध करती है। तथा उसके लिए जो अपनी शक्ति खर्च करता है उसके द्वारा सांसारिक विषयसुख से नितान्त विरुद्ध प्रकार का आत्मवैभव कि जो पूर्णतः निर्दोष सुखमय एवं निर्दोष आनन्दमय है, कैसे प्राप्त हो सकता है? शाता के लालच में एक भव के अल्प सुख के पीछे अनन्त जन्मों के अनन्त दुःख भोगे, चौरासी की मार सहन की, फिर भी जीव अब भी सावधान नहीं होता है। जो जाग्रत होते हुए भी सोने का ढोंग कर रहा हो उसे जगानेवाला किस प्रकार जगा सकता है? इस प्रकार एकान्त में अपनी दशा का लेखा-जोखा जाँचते रह कर अपने जीव को सीख देते रहेंगे तो बहुत लाभ होगा ऐसा ज्ञानियों का अनुभव है।

185. २८५. भगवान महावीर के साढ़े बारह वर्ष के साधनाकाल के विषय में चिन्तन कर के उसे जीवन में उतारें। श्री गजसुकुमार मुनि, श्री मेतार्य मुनि, श्री खंधक मुनि आदि महापुरुषों के प्रेरक चरित्रों की चर्चाविचारणा भी सत्संग में करें। मुझे अनुभवसिद्ध विश्वास है कि इससे बल में वृद्धि होगी।

186 २८६. देह तो मिट्टी है और वह मुफ्त में मिलती है। उसकी इतनी चिन्ता किस लिए? आत्मा अचिन्त्य चिन्तामणि रत्न है। केवल उसकी रक्षा ही करने योग्य कर्तव्य है। वह रक्षा आत्मभाव में स्थिर रहनेवाला ही कर सकता है। देह के गुलामों से वह सम्भव नहीं।

187 १८७. अनुभवी पुरुषों के पास से जो अनुभव मिलते हैं वे सजीवन बीज हैं। अव्यक्त को व्यक्त करना यही साधना है।

188 १८८. उदयाधीन स्थिति जब स्वाधीन होती है तब आत्मकल्याण का मार्ग सरल होता है और जब सत्पुरुष का आश्रय हो जाय, ज्ञानी और ज्ञान का ध्यान हो जाय तब लक्ष पर पहुँचा जाता है। मुनिदशा साहजिक जीवन है। वस्त्रत्याग और वस्त्रग्रहण का जो आग्रह हो रहा है यह एकांतिक रूप में हितकर नहीं है। धर्मशासन प्रेमशासन है। और प्रेमशासन सफल होता है, हुआ है।

189. १८९. स्वयं की भूलें ध्यान में रहती हैं तो दूसरों की भूलें बरदाश्त हो सकती हैं। जो अपराध क्षमा कर सकता है वही क्षमा माँगने का अधिकारी है। छद्मस्थ स्थिति में भूल होना स्वाभाविक है। जो अपने दोषों के प्रति नज़र रखे और सावधान रहे वह आध्यात्मिक साधना का अधिकारी है।

190 १९०. "मानादि शत्रु महा" उसको हटाना ही चाहिए। सरलता जीवन में अनिवार्य है। समझ में आने के बाद भी दोषों को छुपाना यह वक्र चाल है। भूल को स्वीकार करना ही बड़ी बात है और यह आत्मार्थी का लक्षण है।

191 १९१. इच्छा क्यों करता है? जरा अपने आत्मखज़ाने को देख! कुछ कमी है कि इच्छा करता है? मिटा दे इच्छाओं को। इच्छा का मिटना तप है। जो इच्छातीत है - इच्छाओं से मुक्त है वह तपस्वी है।

192 १९२. आन्तरिक परिणामों में निर्मलता लाने से दुःख मिट सकता है। सद्गुरु के द्वारा जो प्राप्त हो वह मन्त्र है। वह मन्त्र मोहविष को उतार देता है, मोह रूपी विष का नाश करता है। साकार की यह महिमा है कि पूर्ण प्रेम से अगर उसकी उपासना करें तो वह हृदयमन्दिर में विराजमान होगा अर्थात् उसके द्वारा आत्मदर्शन होगा। आत्मलक्षपूर्वक उपासना चाहिए।

193. १९३. प्रत्यक्ष सद्‌गुरु की कृपा और आज्ञा के बिना हम जो भी साधना करते हैं वह कल्पना है, वह आत्मा के लिए हितकर नहीं होती। पुण्य और पाप के सम्बंध का विच्छेद करने से आत्मा का कल्याण होता है। मार्गानुसारिता आने पर पुण्य में से रस उठ जाता है, वह भी बन्धन लगता है।

194. १९४. अगर हम आदर्श उत्पन्न करनेवाला जीवन जियें तो हम आदर्शरूप बन जायेंगे। शिथिलता को दूर करने के लिए उत्कृष्ट अवलम्बन लेना चाहिए।

195. १९५. ग्यारह गणधरों की जो शंकाएँ हैं उन सब का समाधान आत्मसिद्धिशास्त्र है।

196. १९६. वक्ता को कम से कम आत्मा की अनुभूति हो तो काम में आती है और प्यास जगाती है।

197. १९७. आपकी याने भगवान महावीर की तीन पीढ़ी तक गच्छाग्रह नहीं था, उनके बाद यह आग्रह शुरु हुआ। जैसे कृपालुदेव के भक्त तो एक थे। उनसे हमें कुछ लाभ मिला। दूसरी पीढ़ी तक वह ठीक रहा। आज तीसरी पीढ़ी में देखिए, क्या हालत है? सब भिन्न भिन्न अभिप्राय वाले हो गये हैं।

198. १९८. परम कृपालुदेव आज बड़े पुण्य से हाथ आये हैं। पकड़ कर लो। सहजात्मस्वरूप है। अखण्ड शरण स्वीकार कर लो। कल्याण ही कल्याण है।

199. १९९. पुराणपुरुष अर्थात् परमात्मस्वरूप आत्मा।

200. २००. परम कृपालु जैसे अनन्त कृपालु होश में लाने के उपाय बिना मूल्य कर रहे हैं। किसी प्रकार यह जीव जाग्रत हो इस हेतु से बिना मूल्य परिश्रम कर रहे हैं। परन्तु यह जीव कैसी बेहोशी में है कि जाग्रत होता ही नहीं है। मोह में डूबा हुआ यह जीव स्वयं अपना ही शत्रु है। संयमरहित पात्र में इस जीव ने अपना जीवन भर रक्खा है। पाँचों इन्द्रियों के विषयों के प्रति ही उसका प्रेम है और इसी कारण से भवरोग को मिटाने वाले महावैद्य के समान कृपालु देव की दवा काम आती नहीं है और असाध्य रोगी के रूप में ही यह

२०४ २०५. मार्गदर्शक पर विश्वास की कमी होगी तो उनकी शिक्षा सफल नहीं होगी। निर्विकल्प विश्वास के साथ शिक्षा ग्रहण करेंगे तो सफलता प्राप्त होगी।

२०६ २०६. कषायों का शमन करना अर्थात् अपने उपयोग को शमन करना, क्यों कि कषाय तो कषाय का काम करेंगे, परन्तु उसमें से उपयोग को मोड़ लेना है, उनका शमन करना है। अज्ञानवश भी ज़हर खा लिया जाय तो उसके असर में कमी नहीं होती। कषाय भी हलाहल विष के समान ही होते हैं।

२०७ २०७. ज्ञानियों पर अगर यह जीव विश्वास रखे तो ऐसा कर्म करते समय मन में यह विचार उठेगा कि यह करने योग्य नहीं है। और ऐसा ख्याल रख कर अगर वह काम किया जाये तो कर्मबन्ध कम होगा। रूक्ष (रूखे) और चीकने अणु का संयोग हो तब बंध पड़ता है। सत्पुरुष के आश्रय में यह भाव- 'मैं आत्मा हूँ'- जितने अंशों में दृढ़ रहेगा उतने अंशों में कषायों का शमन होगा, क्यों कि उतना समय उपयोग आत्मा में स्थिर होने के कारण कषायों का शमन होता है।

२०८ २०८. श्री सद्गुरुने जिसे मान्य किया - प्रमाणित किया वही मुझे मान्य ही है। इस बात में तनिक भी विकल्प उठे नहीं ऐसा दृढ़ विश्वास मन में होना चाहिए। उनको याद करना अर्थात् आत्मा को याद करना। उनके निमित्त से स्वयं का स्मरण होता है। अनन्तानुबंधी का प्रकार खतम होने लगे। कोई भी काम करते हुए आत्मा एवं सहजात्मस्वरूप परम गुरु का विस्मरण न हो ऐसा पुरुषार्थ निरन्तर करते रहना चाहिए। सभी ने एक समान श्रेणी पर केवलज्ञान प्राप्त किया है ऐसा तो है नहीं, परन्तु जिसके भी आधार पर प्राप्त किया है वह है स्वरूप-स्मृति। उस धारा की अखण्डता से अंतर्मुहूर्त काल के लिए एक ऐसी स्थिति निर्मित हो जायेगी जो केवल ज्ञानियों को हो रही है। देह देहरूप में और आत्मा आत्मारूप में यह प्रतीतिधारा अखण्ड करने से क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।

बादल आ जाय तो वह गिर पड़े परन्तु यदि सद्गुरु का आश्रय हो तो पुनः मूल स्थान पर आ जाय।

२०९. २०९ शुभ आचार, शुभ विचार, शुभ करणी - ये सब पुण्य के प्रकार हैं, धर्म के नहीं। आत्मार्थी के लिए बात भिन्न है, संसार के लिए बात भिन्न है। अन्तिम भव करने हेतु तो घोर पुरुषार्थ करना होगा, जागृति भी बहुत रखनी होगी, उपयोग जागृत रख कर पुरुषार्थ करना होगा। ऐसे पुरुषार्थ के साथ साकार मूर्ति श्री परम कृपाळु के वचन के आश्रय से बल लगायें, तो ऋण चुकता क्यों न हो? अनन्य निष्ठापूर्वक आत्मप्रतीतिधारा के साथ कृपाळु देव के आश्रय में अगर पुरुषार्थ करना आरम्भ करें तो वह अवश्य सफल होगा। एक ही भव में लक्ष तक पहुँचा जा सकता है। पक जाने के बाद निंबोरी भी मधुर हो जाती है, अतः परिपक्वता आनी चाहिए। "सद्गुरु की आत्मा की चेष्टा के प्रति वृत्ति रहनी चाहिए।" यह कह कर तो कृपाळु देव ने कमाल ही कर दी है। प्रयोजनभूत तो यही है।

२१०. २१०. अपूर्व विनयगुण के बिना सत्पुरुष की वाणी हृदय में उतरेगी ही नहीं। अपूर्व विनयगुण हो तो ही सत्पुरुष की वाणी हृदय में उतरेगी - आत्मसात् होगी और अपना काम कर जायेगी।

२११ २११. चेतनारूप शक्ति जो बाहर फैली हुई है उसे संजो कर अन्तर में रखो। उसके बाहर जाने से ही कषाय जाग्रत होते हैं। समा कर - संजो कर रखेंगे तो कषाय यानें ज़हर पैदा नहीं होता। उसको कहते हैं: कषायों का शमन करो।

२१२ २१२. स्वरूप जागृति को अगर अखण्ड बनाया तो (जीव) एकावतारी भी हो सकते हैं। परम कृपाळु परम गुरु पर नज़र यानें लक्ष लगा ही रहे और स्वरूप जागृति रहे तो एकावतारी दशा प्राप्त हो सकती है। ऐसा लक्ष क्यों नहीं होता? उसकी ओर महिमा बुद्धि नहीं है। कृपाळु की आत्मा की महिमा देखो: "सम्पूर्ण जगत पूरा सुवर्णमय बन जाय तो भी तृणवत् है।" सत्पुरुष की वाणी सत्-का जिन्होंने इसमें चंचुपात किया है और रसपान

किया है, ऐसे सन्तों से समझना चाहिए, तब वह समझ में आती है।

213. २२३. चेतना के अंदर समाने का प्रयोग है कषायों को समाने का प्रयोग। और इसी जन्म में मोक्ष प्राप्त करना है तो जिनसे हम माँगते हैं उन सब को माफ़ कर दो और जो हम से माँगते हैं उन्हें खुल्ला खुल्ला कर दे दो। जिसने मोक्ष प्राप्त किया है, उसी प्रकार पाया है। अगर आयुष्य ने साथ ना दिया तो एक ही भव होगा।

214. २२४. प्रतीतिधारा, लक्षधारा और अनुभूतिधारा को अखण्ड बनायें। अनुभूतिधारा जब अखण्ड होती है तब सबके सब कषायों का शमन हो जाता है, कोई किंचित् भी ज़ोर नहीं कर सकता।

215. २२५. सब से पहले स्मरणधारा अखण्ड होनी चाहिए। लक्ष, प्रतीति और अनुभूतिपूर्वक कृपाळु देव को हृदयमन्दिर में धारण कर लिया, उनकी छबी अंकित हो गई - यह है शरण, और शरण में स्मरण अखण्ड होता है। 'करना स्वयं को ही पड़ेगा। और कोई कर नहीं देंगे। ज्ञानी इशारा करेंगे, और कुछ नहीं करेंगे।'

216. २२६ त्रिकालिक समय अनन्त है लेकिन हमारे हाथ में वर्तमान समय है। वर्तमान समय के एक क्षण के अतिरिक्त हमारे हाथ में कोई समय नहीं है। उसका हम सदुपयोग करें तो कर सकते हैं। ज्ञानी सदुपयोग की शिक्षा देते हैं।

217. २२७ जो शरीर में आत्मबुद्धि है उसको हटा कर स्व में अन्तर्मुख हो कर, स्व में आत्मबुद्धि करो। उसके द्वारा सद्गुरुकृपा से, सफलता हो जायेगी - भान हो जायेगा कि यह है आत्मा और यह है शरीर। कषायों के लिए मारक शक्ति है आत्मस्मरण।

218. २२८ आत्मभावना में स्थिर होनेवाले आये हुए और आनेवाले कषायों पर ब्रेक लगा सकते हैं। शम

219. २२९ - बन्धन को कायम रख कर आगे नहीं बढ़ सकते हैं। और यह है 'संवेग'। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है - इच्छारूप प्रवृत्ति और उदीरणारूप प्रवृत्ति।

भजनानंद में आगे बढ़ने की चाह है, अच्छा है यह कोई अपराध नहीं है, लेकिन संसारी प्रवृत्ति और मान पूजा आदि की चाह अपराध है। इसके कारण देहरूपी जेल मिलती। इसी प्रकार की अभिलाषा से निवृत्त हो : संवेग।

220 | 220. इतने काल तक क्या किया? परिक्रमण किया, परिक्रमण!! अब यह परिक्रमण करने से रुक जायें। निर्वेद : जड़ पदार्थ का वेदन न होना चाहिए। स्वसंवेदन होना चाहिए। यही निर्वेद है।

221 | 221. जेल की व्यवस्था करने की जिम्मेवारी कैदी की नहीं है जेलर की है। तो फिर हम इस कैदखाने की व्यवस्था क्यों करते हैं? इस देह रूपी कैदखाने के जेलर हैं भगवान। शुभाशुभ कर्म, इच्छा और अभिलाषा से ही जेल की सजा मिलती है। इन्हें हटा दें तो संवेग त्वरित गति से आगे बढ़ेंगे।

222 | 222 - स्वयं के साथ जो धोखा करता है, वह दूसरों के साथ कभी प्रामाणिक नहीं बन सकता। मति विपरीत है तो परिणाम भी विपरीत ही होगा। परिणामों की जागृति होना निर्वेद है। संवेग और निर्वेद दोनों एकदूसरे के पूरक हैं।

223 | 223 - अरे! कितना भटकते हो अपने आपको छोड़ कर! सब की भलाई की बातें करते हो लेकिन औरों की भलाई नहीं कर सकते। आप केवल अपनी भलाई कर सकते हैं। तो अब रुक जाओ। रुक कर क्या करेंगे? सोचो... विचार करो...। 'मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ..?' आदि विचार करो..। ठीक ढंग से अगर सोचेंगे तो प्रतीति हो जायेगी कि हम परिपूर्ण सुखी हैं। दृष्टि भीतर स्थिर हुई कि परिपूर्ण सुख के अनन्त खजाने को प्राप्त कर सकेंगे।

224 | 224. आत्मा के लिए उपयोगी वस्तु के अभाव में जो दुःख होता है वह असली - सच्चा दुःखी है और ऐसे दुःखी पर त्रिलोकीनाथ की कृपा होती है।

225 २२५. संसार की अनुकूल परिस्थिति ही संसार में अनन्त संसार में फँसाने की जाल है। परिस्थिति कायम नहीं रहती। और हम प्रयत्न करते हैं इसे कायमी -स्थायी- बनाने की। उसमें कर्मबन्ध और संसार बढ़ता है। प्रतिकूल परिस्थिति ही भगवान की दुनिया में जाने का प्रबल मौका है, और जो इसे प्राप्त करता है वह भाग्यवान है।

226 २२६. भगवान कब कहलायेंगे? जब निर्विकल्प समाधि-स्थिति है। स्वयं को देहरूप मानते हैं, इसलिए परिस्थिति के गुलाम हैं। यहाँ तो देहरूप मानना ही मना है। इसलिए मैं आत्मा - भगवान हूँ, देहरूप नहीं हूँ ऐसी पकड़ करनी ही पड़ेगी, और लक्ष, प्रतीति, अनुभूति अखण्ड करनी होगी।

227 २२७ अब तक क्या किया? मिथ्या भावों का पोषण और इसलिए संतप्त (तपायमान) रहते हो। वहाँ से अटको। शरीर और आत्मा अलग है। उनको एकरूप में अनुभव करना मिथ्यात्व है। यह भूल है और इसका परिणाम चोर्यासी के चक्कर हैं। इनसे अटको। और सम्यक् श्रेणी की ओर आगे बढ़ो। सम्यक् भावों को पकड़ेंगे तो कषाय स्वतः ही छूट जायेंगे। छोड़ना नहीं पड़ेगा।

228 २२८ शरीर संसार की चीज़ है, उसे संसार को सौंप दो। आत्मा परमात्मा की चीज़ है, उसे उनके चरणों में समर्पित कर दो।

229 २२९. आत्मभाव में रहनेवाले को संसार की कोई भी वस्तु बाधा नहीं पहुँचा सकती। आत्मभाव में रहने का घर है — 'समघर'।

230 २३०. दृष्टि शरीर में रखते हैं तो गड़बड हो जाती है, दृष्टि (ध्यान) आत्मा में रखने से कोई गड़बड़ी नहीं होती। अथवा सर्वांग आत्मा को प्राप्त कर लिया है ऐसे सत्पुरुष परम कृपालु की मुद्रा पर दृष्टि को स्थिर रहने दो।

231 २३१. जिनकी दृष्टि आत्मा के प्रति स्थिर हो गई है वे दूसरे जीवों पर कम्पित होते हैं। यह है अनुकम्पा। और उनका दुःख मिटाने के लिए यह उपदेश कार्य है।

232 २३२. सत्पुरुष किसे मानें? जो सत्साधनायुक्त हो, या सत्साधना की सिद्धि कर चुके हैं वे हैं सत्पुरुष! प्रारंभिक स्थिति हो या संपूर्ण स्थिति या बीजकेवली हो, उनमें श्रद्धा रखो।

233 २३३. जिन्हें देखने-जाननेवाला प्रत्यक्ष दिखाई दे या उनका अनुभव जिन्हें है वे हैं आत्मज्ञानी।

234 २३४. अपूर्व वाणी अपूर्व पुरुष से सुनने को मिले तो सोई हुई आत्मा जाग्रत हो जाती है।

235 २३५. परम श्रुतलब्धि - सब श्रोताओं को समाधान प्राप्त होता है और सब को ऐसा अनुभव होता है कि ये तो अपूर्व बातें हैं। 'ये परम श्रुत के लक्षण हैं।'

236 २३६. अजेय ऐसे राग आदि जिसने लीलामात्र में जीत लिये हैं वह है सत्पुरुष - सत् को प्रगट कर लिया।

237 २३७. देव और धर्म सच्चे हैं, लेकिन जिनके द्वारा यह सौदा होता है वे दलाल गलत हैं। श्रीसद्गुरु धर्म व्यापार के बड़े दलाल हैं।

238 २३८. धर्म में आत्मधन के अतिरिक्त और कोई धन नहीं होना चाहिए। धर्म का फल तत्काल प्राप्त होता है। जिन्होंने यह प्राप्त किया है उन्हें खोजो। सत्पुरुषरहित भूमि नहीं है, कमी तरतम्य हो सकता है, और सत्पुरुष विरल होते हैं। मुमुक्षुता चाहिए।

239 २३९. ऐसे पुरुष की वाणी सुनने के बाद पहले की तुलना में परिवर्तन अवश्य होता है। यह है सत्पुरुष की वाणी।

240 २४०. सत्पुरुष के द्वारा दिये गये मन्त्र से मोह का नशा उतर जायेगा और 'हुं तो आत्मा छुं जड़ शरीर नथी' बदल गई दृष्टि। सत्पुरुष के ध्यान के द्वारा दीप से दीप प्रज्वलित होता है।

241. २४१. आत्मा ज्ञानस्वरूप है। आत्मा का काम केवल जानना है। चैतन्य दर्शनरूप भी है और ज्ञान रूप भी है। दिमागी कसरत जब तक देखने में शुरु नहीं होती तब तक वह दर्शन है और जब वास्तव में दिमागी कसरत आरंभ होती है तब उसे ज्ञान कहते हैं।

242. २४२. दर्शन करने की पद्धति फोटोग्राफी पद्धति है। निर्विकल्प होने से यह प्रगट होती है। भीतर जो भगवान हैं उनको मिलने के लिए भगवान की मूर्ति है - वटवृक्ष की तरह, उनके बीज की तरह, अपने ज्ञान को यदि प्रगट करें तो विश्वदर्शन हो जाय उतनी शक्ति उसमें है। अर्थात् परमात्मशक्ति है। परमात्मा के नाम से जो जो चमत्कार हम सुनते हैं वह सारी शक्ति ज्ञान में है। यह प्रगट कब होती है? जिनको प्रगट है उनकी छबि हृदयमन्दिर में प्रतिष्ठित करें और हमारे ध्यान को उनकी मुद्रा में अखण्ड बनायें तो परमात्मशक्ति प्रगट होती है।

243 २४३. देहभान छूट जाय तब कायोत्सर्ग होता है।

244 २४४. सत्पुरुष पर निर्विकल्प विश्वास है तो वे कहें वही होगा। सत्पुरुष ने कहा वैसा करो तो ऐसा होगा। अवश्य ऐसा ही होगा। विश्वास निर्विकल्प चाहिए।

245 २४५. आत्मदर्शन करना है तो जिन्होंने वास्तव में सही दर्शन किये हैं उन पर हृदय में विश्वास स्थापित करके उन्हींका अनुसरण करो।

246 २४६. शब्दों का रटन करते हैं लेकिन अर्थ का भान नहीं है इसलिए प्रयोगात्मक लाभ नहीं होता।

247 २४७. जिनके दर्शन में आत्मा है, ज्ञान में आत्मा है, चारित्र में आत्मा है वे सत्पुरुष हैं।

248 २४८. चोले में (देह पर) जिनकी नजर है वे अजीवन पुरुष हैं और जिनकी आत्मबुद्धि आत्मा में लगी हुई है वे हैं सजीवन मूर्ति।

249 २४९. अनादिकाल से शरीर पर ही नजर है, उसे सत्पुरुष के ऊपर लगा दो। आत्मस्वरूप पर, आत्मा पर नजर लगा दो (आत्मा पर ध्यान केन्द्रित कर दो)। यही अभ्यास करना है।

250 २५०. उपादानरूप में जो क्रिया करनी है वह यह है - आत्मा को शुद्ध करने की और यह क्रिया आत्मज्ञानी के सहारे ही होती है। मन को वश करने के लिए शरीर को सज़ा देनी है यह उपयोग रख कर ही तप करना चाहिए। अनाहारी आत्मा की स्मृति सतत होनी चाहिए।

251 २५१. नाम-ठाम, जाति-पाँति सब कुछ शरीर का है, आत्मा का नहीं, और उसको ही (शरीर को ही) पकड़ा है तो आत्मा को कैसे पाओगे? आत्मा इन सब से केवल भिन्न है।

252 २५२. जिनकी नज़र (ध्यान) आत्मा पर ही केन्द्रित है - स्थिर है, उनको खोजो अर्थात् सत्पुरुष को खोजो। और ये मिल जायँ तो इनके प्रत्येक आज्ञा-वचन पर श्रद्धा रखो। सत्पुरुष हैं। इसलिए कहा है कि 'खोजो'। सद्गुरु हैं मार्गदर्शक। और वे आँखवाले होने चाहिए। आत्मा को देखनेवाली - आत्मदर्शन करनेवाली आँख खोजो। अवश्य मिलेंगे। अगर अपनी दृष्टि में दोष होगा तो नहीं मिलेंगे। सत्पुरुष का मिलना पूर्वपुण्योदय है।

253 २५३ लिबास (बाह्य दिखावा) ही नज़र में है तो फिर कोई भी हो - वह मिथ्यात्वी है। आत्मा नज़र में है - आत्मार्थी है - वह समकिति है।

254 २५४ - सत्पुरुष को खोजो, उनके परिचय में रहो और उनके हो जाओ (पूर्ण समर्पण कर दो)। उनको बनाओ अपने अध्यापक - अपने गुरु और वे जैसा सिखायें ऐसा सीखो। कैसे देखना, कैसे जानना कि जिसका फल सुख हो, शान्ति हो यही वे सिखायेंगे। उन पर श्रद्धा रखो याने पकड़ कर लो। हम आश्रव जल में डूब रहे हैं, हमें जो रस्सी दें वे हैं सत्पुरुष। तो अगर बचना है तो बचने के लिए पकड़ लो...।

255 २५५ - आज्ञारूप धर्म को पकड़ना यह रस्सी पकड़ना है। पकड़े बिना कभी मुक्ति नहीं। बड़ी अखण्ड श्रद्धा के साथ पकड़ लो। उनके वचन - चाहे कैसे भी हो उनमें श्रद्धा रखो।

256 २५६. सम्यक् दृष्टि जीव भयरहित है। जो भयभीत है वह आस्ति तत्त्व को नहीं मानता; शरीर को आत्मा मानता है। इसलिए तो वह भयभीत है। सद्गुरु कृपा कर के देहबुद्धि छुड़ाते हैं आत्मबुद्धि कराते हैं। जिसकी आत्मबुद्धि हो जाती है वह है आस्तिक देहगुणधर्म के परिवर्तन से जो भयभीत होता है वह है नास्तिक।

257 २५७. सद्गुरु के माध्यम से क्या करना है? मैं आत्मा हूँ यह अनुभव करना है, जानना है, समझना है। सत्पुरुष के वचन पर श्रद्धा हो जायेगी तो वे क्या करायेंगे? आत्मा के प्रति स्थिरता करायेंगे ...... आत्मदर्शन करायेंगे।

258 २५८. वास्तव में सद्गुरुपद है-(साधुता है) वह समकित की याने सम्यक्त्व की उपस्थिति में है, समकित के अभाव में मोक्ष नहीं होता। अगर दृष्टि प्रगट हुई तो समझें कि समकित हुआ। सत्पुरुष की उपदेशधारा में आत्मा ही आत्मा आयेगी। वे इशारा करते हैं - 'तू आत्मा है।' जिस रूप में हम नहीं हैं उस रूप में पकड़ना यह है नास्तिक दृष्टि। शरीर में हैं तब तक पुण्य और पाप का व्यापार होता है। जब से आत्मा में दृष्टि स्थिर होती है तब से साधुपद का आरम्भ होता है।

259 २५९. 'जिनका दर्शनमय और ज्ञानमय उपयोग आत्मा में है वे हैं सत्पुरुष' जिनकी ध्वनि भी आत्मानुभव की निकलती है। तो खोज करो, ढूँढो ऐसे सत्पुरुष को। उनके आश्रय से बेहोशी हट जायेगी, होश में आ जाओगे, श्रद्धा हो जायेगी कि 'मैं आत्मा हूँ।' इन पाँचों के अभ्यास से सत्पात्रता विकसित होती है। और पाँचवाँ मिल गया तो सब सरल हो जायेगा।

260 २६०. सत्पुरुष की मुद्रा के प्रति चित्तवृत्ति का अनुसन्धान यह है शरण। हमारे प्रेमसरोवर की तीन नहरें हैं।

तीन हिस्से - कामराग, स्नेहराग और दृष्टिराग।
तीर्थंकरों के अकिंग - संन्यास है। तीर्थंकरों ने
वेष ग्रहण नहीं किया था। तीर्थंकर शैली में
ये वेष की बातें नहीं हैं। बीच का जो काल
आ गया उसमें वेष की महिमा बताने लगे
और फिर... आग्रह बन गया। ये हमारे भगवान!
यह हमारा मन्दिर! ये हमारे महाराज। ये
हमारे उपाश्रय!! यह क्या है? सब दृष्टिराग!
दृष्टिराग के प्रवाह में हम रागद्वेष के समुद्र में
जा रहे हैं। इन तीन प्रकार से हमारा (सत्पुरुष के प्रति) प्रेमसरोवर खाली हो गया।

261 २६१. 'आत्मा में दृष्टि स्थिर होने से दृष्टिराग
खतम होता है' इस बात को अवश्य जान लो।
जब तक हम अन्ध हैं, नयनवालों को खोजो।
और शरणापन्न हो जाओ। शरीर और आत्मा
भिन्न भिन्न दिखाई पड़ते हैं वह है
आत्मज्ञान, वह है साधुपद।

262 २६२ 'स्मरण और शरणधारा सधेंगी सत्पुरुष
के आश्रय में' आश्रय के बिना कभी नहीं
सधेंगी।

263 २६३. सत्पुरुष की प्राप्ति के बिना पर्यटन का
(संसार भ्रमण का) अन्त आनेवाला नहीं है। शेष
चार सहायक हैं। अन्धे हैं तब तक आँखवाले का
आश्रय अनिवार्य है।

पत्रांक ७१०: विचारणा में से

264 २६४: 'आत्मा सच्चिदानन्द' केवलज्ञान की आराधना श्रेणी
इस पत्र में है। हे भाई! तू आत्मा है। सत्स्वरूप,
चेतनस्वरूप, आनन्दस्वरूप है। परन्तु जब चित्तवृत्ति का
वहाँ संधान हो तब ही उसका अनुभव हो सकता
है। हे भगवान! मैं दुःखी हूँ। मुझे बचाओ! भ्रमवश
शरीर को आत्मरूप मान कर दुःखी होते हैं। जब तक
यह जीव अन्धकार में है तब तक किसी प्रकार का
फर्क पड़नेवाला नहीं है। तू सुखी है! अनन्त
अव्याबाध सुखस्वरूप है! सद्गुरु की शरण में जा।

सद्गुरु आत्मा के लक्षण और गुण बता कर उसकी पहचान कराते हैं।

265 २६५. ज्ञानी गुरु कहते हैं कि तू आत्मा है परन्तु मोह में फँसा यह जीव मानता नहीं है। और उसका जो रूप नहीं है - जिस रूप में वह नहीं है - उस रूप में स्वयम् को मानता है।

266 २६६. बिजली का करण्ट जिस आकार में जायेगा उस आकार में दिखाई देगा। उसी प्रकार परम ज्योतिस्वरूप यह आत्मा जिन जिन बिजली की ट्यूबों में (देह में) जाती है वैसी दिखाई देती है। एक निश्चय कि आत्मा अरूपी है, रूपी नहीं है।

267 २६७. अमुक कक्षा के साधकों के लिए साकार उपासना ही सहायक हो सकती है। जब तक अन्तःकरण में प्रकाश न हुआ हो तब तक साकार उपासना। विशेष कक्षा के साधकों के लिए ही निराकार उपासना लाभप्रद है। दृष्टिवाले पुरुष का अनुसरण करना आवश्यक है। यह भक्तिमार्ग है। जब अन्तर्चक्षु खुल जायें तब औरों को तकलीफ़ न देना यह निराकार उपासना है।

268 २६८ "ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे तहाँ समजवुं तेह,
त्यां त्यां ते ते आचरे, आत्मार्थी जन एह॥"।

तीर्थंकरशैली अगर समझ में आये तो आत्मा का स्पष्ट अनुभव हो सकता है। जिसने इस शैली का किंचित् भी अनुभव किया वह सम्प्रदायों के बन्धन में बंधता नहीं है, अलिप्त, आझाद रहता है। द्रव्यभाव बन्धन से मुक्त कराये ऐसी है तीर्थंकरशैली। यह आत्मा वर्ण, गंध, रस, स्पर्शरहित है और यह देह आत्मा के साथ है। आत्मा अलग, शरीर अलग। तू जिस रूप में स्वयं को मानता है उस रूप में तू नहीं है। भाई! तू देहस्वरूप नहीं, तू तो सच्चिदानन्द आत्मा है।

269 २६९. सत्पुरुष सत् को ही देखते हैं और साथ साथ अणुपरमाणु को भी देखते हैं - पूर्णतः भिन्न भिन्न देखते हैं - जड को जड रूप में और चेतन को चेतन रूप में।

270. २७०. अगर भान रहे, भ्रम दूर हो जाय तो वह अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है। ज्ञानीजन द्रष्टा को एवं आकार प्रकार को – दोनों को देखते हैं। पूर्ण रूप से भिन्न भिन्न देखते हैं। जड को जड रूप में और चेतन को चेतन रूप में। इस दृष्टि का नाम सम्यक् दृष्टि है। तू जडस्वरूप नहीं सच्चिदानन्द स्वरूप है – इस भावना की जब शुद्धि हो तब उस आनन्दस्वरूप का जो अनुभव हो वह आनन्दघन है।

271 २७१. ज्ञानोपयोग : ज्ञान स्वयं की तथा पर की पहचान करवाता है अतः ज्ञानगुण के साथ मित्रता करें तो? सिर्फ ज्ञानस्वरूप आत्मा को पकड़ कर उसमें लीन रहना यही केवलज्ञान की आराधना है। परम कृपालुदेव ने हमारे लिए उसका भण्डार भर दिया है, उसे खोल कर देखें और तदनुसार अनुभूति करें तो इस काल में भी उसकी (केवलज्ञान की) अनुभूति होगी।

272 २७२. जिसकी दृष्टि में आत्मा हो उसकी दृष्टि में अन्य कुछ कैसे आ सकता है? वस्त्र हों तो भी ठीक, न हों तो भी ठीक। शरीर स्त्री का हो या पुरुष का, परन्तु दृष्टि ही आत्मा में स्थिर हो वहाँ विकल्प उठ ही नहीं सकता।

'सर्वात्ममाँ समदृष्टि दो'
(सर्वात्म में समदृष्टि दीजिए)

273. २७३. यह दृष्टि किस प्रकार दी जाये? सभी देहधारियों में समदृष्टि देने जायें तो काम कैसे चल सकता है? क्यों कि देह तो छोटी-बड़ी, मोटी-पतली, ऊँची-नीची – जैसी होगी वैसी ही दिखाई देगी। तो समदृष्टि किस प्रकार हो सकती है? प्रत्येक जीव मेरे — जैसा जीव है, आत्मा है। इस प्रकार देखा जाये तो समदृष्टि प्राप्त हो सकती है। सभी आत्माएँ एक समान

असंख्यात प्रदेश में व्याप्त होती है।

274. २७४. परम कृपाळुदेव की आत्मा ज्ञातपुत्र (ज्ञानी भगवान के पुत्र) थी। सर्व आत्माओं को एक समान मानने से ही समदृष्टि प्राप्त हो जाती है।

'गुरु रह्या छद्मस्थ पण विनय करे भगवान'

275. २७५. दृष्टान्त : एक गाँव में शादी हो रही थी। शादी के पश्चात् दुल्हेराजा मित्रों के साथ टहलने निकले हैं। गाँव के बाहर उद्यान में जहाँ वृद्ध आचार्य महाराज अपने शिष्यों के साथ विराजमान थे। कुतूहल भाव से सब लड़के वहाँ आये और साधु महाराज को "मिंढळ बंधा" (नव-विवाहित) युवान की ओर इशारा कर के बोले - 'इसे दीक्षा लेनी है अतः आप इसे दीक्षा दे दें।' ऐसा कहकर वे साधु महाराज का मज़ाक करते हैं। साधु महाराज ने कहा, 'हमारे गुरुमहाराज के पास जाओ। दीक्षा देना हमारा अधिकार नहीं है। सब लड़के अनेक साधु-महाराजों की इसी तरह मज़ाक करते करते अन्त में आचार्य महाराज के पास पहुँचते हैं। और फिर उसी नवपरिणित युवान की ओर इशारा कर के बोले, 'प्रभो! इनको दीक्षा दे दो। बड़ा भारी विराग जगा है उसके मन में। आचार्य महाराज ने उस लड़के से पूछा, 'क्या तुम दीक्षा लेना चाहते हो?' लड़के ने 'हाँ' कहा और सचमुच उसे दीक्षा दी गई। साथवाले युवानों ने सोचा - 'यह तो गज़ब हो गया।' डर के मारे वे सब भाग गये। नये-नवदीक्षित शिष्य ने गुरुदेव से कहा, 'प्रभो! यहाँ से जल्दी प्रयाण करें। समाचार मिलते ही सब यहाँ आयेंगे और आप पर भारी उपसर्ग होगा। प्रयाण की तैयारी हो गई। सब शिष्य अलग अलग मार्ग से चलने लगे। गुरुदेव वृद्ध थे।

उनसे जल्दी चला नहीं जाता था। नवदीक्षित शिष्य सुदृढ़ शरीरवाला था। गुरुदेव को अपने कँधों पर उठा लिया और त्वरा से चलने लगा। शाम हो गई। अँधेरा होने लगा। रात अँधेरी थी। कहीं गड्ढे तो कहीं असमतल भूमि होने के कारण शिष्य के कदम डगमगा जाते थे, वह ठोकरें खाता था जिससे गुरुदेव को तकलीफ होती थी जिसे वे सह नहीं पाते थे। वे चिल्लाकर शिष्य के सिर पर झापड़ देते और क्रोध भी करते लेकिन शिष्य सोचता था - 'मेरे कारण ही गुरुदेव को कष्ट हो रहा है, मैं कितना अभागा हूँ?' वह इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ चल रहा था। गुरुभक्ति और पश्चात्ताप की धारा बढ़ती गई और पर्दा हट गया। घोर अँधेरे में भी उसे स्पष्ट दिखाई देने लगा। अब पैरों की अस्थिरता दूर हो गई और वह स्थिर कदमों से चलने लगा। तब गुरुदेव ने कहा: 'अब कैसे सीधे चल रहे हो---!' शिष्य ने कहा, 'प्रभो! आपकी कृपा से।' गुरुदेव ने पूछा, 'इस अँधकार में भी तुम्हें सुस्पष्ट दिखाई देता है?'

शिष्य ने कहा, 'गुरुदेव आपकी कृपा से।'

देखिए, केवलज्ञान हो चुका है फिर भी गुरुदेव का विनय कर रहे हैं! तीसरी बार जब गुरुदेव ने पूछा, 'क्या सच कह रहे हो?' शिष्य ने इस बार भी वही उत्तर दिया---

'गुरुदेव! आपकी कृपा से---।'

तुरन्त गुरुदेव शिष्य के कन्धों पर से नीचे उतर गये और केवली के प्रति अविनय के लिए उनसे क्षमायाचना की।

२७८. २७६. अपने आपके सम्बंध में जो मान्यता है वह गलत है। तू आत्मा है, मृत्युधर्मा नहीं है, चैतन्यमूर्ति ही है, परम आनन्दस्वरूप

है। त्रिकाल उपस्थिति तो सभी - छः द्रव्यों की है, लेकिन चेतना लक्षणवान ज्ञानवान् जीव है।

277 २७७. अपने आपके सम्बंध में जो भूल है उसे समझ कर अपनी मान्यता को सद्‌गुरु के द्वारा बदलना है और यही सुख का मार्ग है। यह सही जानकारी ही दुःख की दवा है। ज्ञान की अपेक्षा से आत्मा का चिन्तन करो।

278 २७८. सत्समागम के हेतु तीर्थयात्रा का माहात्म्य है। कई महात्मा मिल जायें यह सम्भव है। और वे ही तो तीर्थस्वरूप हैं, क्यों कि महात्मा की प्राप्ति होने से संजीवन 'मूर्ति' का बोध मिलता है। सन्तों के चरणों में सभी तीर्थ समाविष्ट हो जाते हैं।

279. २७९. परमहंस महात्माओं के हृदय में कोई इच्छा नहीं उठती। तो फिर परमात्मस्वरूप परमात्मा को जो कि पूर्णतः तृप्त हैं उनको इच्छा कैसे होगी? भगवान को इच्छा हुई और उन्होंने सृष्टि का सर्जन किया ऐसी बात जो बताई जाती है वह तो भगवान का अनादर करने जैसा है।

280. २८०. इस ड्राइवर तत्त्व का नाम भगवान है। इसमें अनन्त ऐश्वर्य भरा हुआ है। जिन्होंने इनको प्रगट किया वे परमात्मा हैं। 'भगवान' अर्थात 'ज्ञानवान' - ज्ञानमूर्ति। यह जीव जब तक प्रमत्त दशा में है तब तक इच्छा उठती है। मुक्त ईश्वर को इच्छा नहीं उठती - इच्छा नहीं है - इच्छातीत हैं। "साक्षीकर्ता" और "साक्षात्कर्ता" में बड़ा भारी अन्तर है। भगवान "साक्षीकर्ता" हैं। ब्राह्मणग्रंथों में भगवान को "साक्षीकर्ता" के रूप में स्वीकार किया गया है। भगवान साक्षी हैं।

281 २८१. 'क्यों बाहर भटके भाई।
सब सुख तेरे घट माँही ॥'
ड्राइवर साहब को याने आत्मा को बाहर

की कोई भी वस्तु काम आई हो तो बताओ!
लेकिन अज्ञान दशा में यह उत्पन्न होती
है। अपने आपका - स्वयं का भान नहीं है।
मैं शरीर हूँ यह बेहोशी नहीं तो क्या
है? कुमति, कुरूप यह शरीर मैं है, आत्मा
मैं नहीं। देहरूपी रथ में बैठनेवाला रथी! मैं
आत्मा हूँ।

२५२ २८२. 'मैं आत्मा हूँ' यह ख्याल नहीं रहता
यह है बेहोशी। और ऐसा जीव धर्म कैसे
करेगा? कैसे भगवान को पहचानेगा? पहले
अपने आप को पहचानो। सब से पहले 'मैं कौन?'
यह विचार करो। उसका उत्तर खोलो।

२५३ २८३. इच्छा उत्पन्न कर के यह जीव शरीर
के जरिये यह सारा जंजाल उत्पन्न
करता है। यह बड़ी भूल है और यह भूल
अनलिमिटेड - असीम है इसलिए अनादि है।
ज्ञानियों को - जो अनादिकालीन है - जगानेवाला
कोई हो तो जाग सकते हैं। 'यह मैं और यह मेरा'
यह अनादि स्वप्नदशा है।

२५४ २८४. 'शक्तिरूप से केवलज्ञान है' यह स्पष्ट ज्ञान
हुआ है। बीजरूप - 'बादल में सूर्य छुप गया
यह सत्तारूप' 'बीज में जो वृक्ष बनने की
शक्ति है यह शक्तिरूप।' जैसे एक बीज में
अनन्त शक्ति छुपी हुई है। पानी और मिट्टी से
बीज का वृक्ष होता है असी तरह मिट्टीरूप
में सत्पात्रता और पानीरूप में सद्गुरु का ~~[illegible]~~
सत्संग। बोध जल का होना आवश्यक है। इससे
आत्मा का विकास होता है और आत्मा
परमात्मस्वरूप बनती है।

२५५ २८५. 'अमुक काळ शून्यदशा सिवाय कंइ नथी
जोईतुं।' विकल्परहित दशा। दो घडी अपने
घर में अपने स्थिरता की तब ध्यानाग्नि प्रगट
होता है। शून्यदशा से ज्ञान निर्मल होता है
और जड तथा चेतन भिन्न भिन्न परिभाषित

होती है। विकल्पों को भगा देना - दूर करना अर्थात्
विकल्परहित दशा। उसे शून्य कहा जाता है।
चैतन्यरूपी प्रदेश में विकल्परूपी
घुस गया है। उन्हें यहाँ से भगाना होगा युक्तिपूर्वक।
तभी यह चित्त प्रदेश खाली होगा। और तब
आराम से विचारणा - चिन्तन स्फुरित होंगे। इसके
लिए चैतन्यमूर्ति सत्पुरुष का आश्रय है। वहाँ
सर्व विकल्प भाग जायेंगे। - बिना किसी
लड़ाई - झगड़े के... । इस के लिए साकार उपासना
की आवश्यकता है। ज्ञानी भगवान की छवि
को प्रेमपूर्वक हृदयमन्दिर में स्थापित करें और
उनका ही चिन्तन करें, भक्ति करें... विकल्प
भाग जायेंगे।

286 २८६ - हे प्रभु! प्रभु अर्थात् समर्थ। वे विकल्पों
को भगा सकते हैं। इसलिए भक्ति अत्यन्त
आवश्यक है। इसीलिए परम कृपालुदेव ने कहा
है - 'भक्ति सर्वोपरि मार्ग है। भक्ति
क्षणभर में मोक्ष करा दे ऐसा तत्त्व है (पदार्थ है।)'

287 २८७ - महापुरुष शब्द के माध्यम से जो अर्थ
बता रहे हैं वह प्रयोग में आ जाये तब
आराधना होती है।

288 २८८ 'मैं सच्चिदानन्द आत्मा हूँ।' यह
वेदान्त की शैली कृपालुदेव ने ली है। यहाँ
इस शैली को क्यों अपनाया है? क्यों कि इस
काल में भी केवलज्ञान हो सकता है इस तथ्य
का वेदान्त ने स्वीकार किया है। श्वेताम्बर
और दिगम्बर - दोनों आम्नाय केवलज्ञान
को लोकालोक ज्ञान के रूप में मानते हैं।
और कृपालुदेव आत्मज्ञान को केवलज्ञान कहते
हैं। श्रीमान हरिभद्राचार्यजी ने भी आत्मज्ञान को
ही केवलज्ञान कहा है - केवलज्ञान की महिमा
है लोकालोक अर्थात् विश्व का ज्ञान।

289 २८९ - आत्मज्ञान केवलज्ञान है यह बात
शास्त्रों में भी है। केवल एक को जानते हैं

और सब को भी जानते हैं। केवलज्ञान का अनुभव करना है तो लोकालोक ज्ञान से नहीं होता लेकिन आत्मज्ञान से केवलज्ञान की अनुभूति होती है।

२९० २९० - जहाँ जहाँ ज्ञेय है वहाँ ज्ञान है और जहाँ जहाँ ज्ञान है वहाँ आत्मा है। ज्ञेय को हटाकर अकेले ज्ञान में दो घडी उपयोग को स्थिर करो तो ध्यानाग्नि प्रगट हो कर भीतर के पर्दे को हटा देती है और प्रत्यक्ष कर देती है। आत्मदर्शन विश्वदर्शन होता है।

२९१ २९१ - इस काल में आत्मदर्शन नहीं हो सकता है ऐसी प्ररूपणा दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों करते हैं। कृपाळु देव कहते हैं - प्रगट दिख सकता है। श्री सद्गुरु कृपा हो तो असंभव भी संभव होता है।

२९२ २९२ - निर्मल, अत्यन्त निर्मल, परम निर्मल, चैतन्यघन, प्रगट आत्मस्वरूप है भाई। जिसकी दुकान में जो चीज मिलती नहीं है उसकी दुकान में वह माँगने क्यों जायें? कौन जायेगा? स्याद्वाद शैली से यह हाँ और ना कहा है। लेकिन उपदेशक एकान्तिक ना कहते हैं कि मोक्ष नहीं है, आत्मदर्शन नहीं है। मन-संयम का ठीकाना नहीं है और सातवें का स्वीकार करते हैं तथा आचार्य पद का भी। यह असंयति पूजा का अच्छेरा है।

२९३ २९३. कृपाळु देव ने बतलाया कि बीजज्ञान तो होता ही है और केवलज्ञान तक पहुँचना चाहे तो कोई रोकनेवाला नहीं है, पहुँच सकते हैं। यदि हम सही रूप से प्रयोग समझ के - श्री सद्गुरु के द्वारा - तो हम केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

जब धारा छूट जाये तब त्वरा से पुनः अनुसन्धान करो। ज्ञेय को छोड़ दो, हटा दो और ज्ञान को पुनः पकड़ो। विकल्प का सैन्य - मोहसेना आयेगी। उसे देखने और हटाने के लिए साक्षीस्वरूप रहो। अच्छा-बुरा ख्याल नहीं करना चाहिए। सभी ज्ञेयों को हटा दो तो केवल आत्मा ही आत्मा दिखाई देगी। यह भीतर की बात है, बाहर की नहीं। अपने आप को - स्वयम् को जाननेवाले के ख्याल में उपयोग रखना चाहिए।

294 २९४ - जो पदार्थ है इसके आकार दर्पण में झलकते हैं। और वे आकार और दर्पण अलग हैं।

295 २९५ - अपने आपको द्रष्टा के रूप में पकड़ना होगा और अन्य सब दृश्यों को हटा देना होगा - हटा देने के बाद जो रहा वह सब से अलग केवल आत्मा ही रहेगी और वह मैं हूँ।

296 २९६ - अपनी प्रभुत्व शक्ति में ऐसी कोई चमत्कृति है कि रिद्धिसिद्धियाँ सामने आती हैं। बीजरूपा वह शक्ति हमारी आत्मा में है। उस शक्ति का अगर हम सफल प्रयोग करें तो विकास प्राप्त कर के वृक्षरूप बन जायेगा। जो बीच में आता है उसे दूर करना पड़ता है, हटाना पड़ता है, उसमें समय व्यतीत हो जाता है, जीवन बीत जाता है यह बात जो कही गई है वह इस प्रकार है, क्यों कि विकल्परहित होने के बाद ऐसी रिद्धिसिद्धि पैदा होती है, सामने आती है, इसको हटाना पड़ता है।

297 २९७ - सब को हटाते हटाते जो शेष रहा वह है अव्याबाध आत्मा। युक्ति से भक्ति और भक्ति से मुक्ति। अवरोध को हटाओ। अवरोध अर्थात् विकल्पों का घमब। इसको जागृतिपूर्वक हटाओ और आगे बढ़ो। द्रष्टा-ज्ञाता रहो, मध्यस्थ रहो। इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास

जब धारा छूट जाये तब धारा से पुनः अनुसन्धान करो। शेष को छोड़ दो, हटा दो और ज्ञान को पकड़ो। विकल्प का सैन्य - मोहसेना आयेगी। इसे देखने और हटाने के लिए साक्षीस्वरूप रहो। अच्छा-बुरा ख्याल नहीं करना चाहिए। सभी शेषों को हटा दो तो केवल आत्मा ही आत्मा दिखाई देगी। यह अन्तर की बात है, बाहर की नहीं। अपने आप को - स्वयम् को जाननेवाले के ख्याल में उपयोग रखना चाहिए।

२९४ २५३ - जो पदार्थ हैं इसके आकार दर्पण में झलकते हैं। और वे आकार और दर्पण अलग हैं।

२९५ २५४ - अपने आपको द्रष्टा के रूप में पकड़ना होगा और अन्य सब दृश्यों को हटा देना होगा - हटा देने के बाद जो रहा वह सब से अलग केवल आत्मा ही रहेगी और वह मैं हूँ।

२९६ २५६ - अपनी प्रभुत्व शक्ति में ऐसी कोई चमत्कृति है कि रिद्धिसिद्धियाँ सामने आती हैं। बीजरूपा यह शक्ति हमारी आत्मा में है। इस शक्ति का अगर हम सफल प्रयोग करें तो विकास प्राप्त कर के वृक्षरूप बन जायेगा। जो बीच में आता है उसे दूर करना पड़ता है, हटाना पड़ता है, इसमें समय व्यतीत हो जाता है, जीवन बीत जाता है यह बात जो कही गई है वह इस प्रकार है क्यों कि विकल्परहित होने के बाद ऐसी रिद्धिसिद्धि पैदा होती है, सामने आती है, इसको हटाना पड़ता है।

२९७ २५७ - सब को हटाते हटाते जो शेष रहा वह है अव्याबाध आत्मा। मुक्ति से भक्ति और भक्ति से मुक्ति। अवरोध को हटाओ। अवरोध अर्थात् विकल्पों का बम्ब। इसको शान्तिपूर्वक हटाओ और आगे बढ़ो। द्रष्टा-ज्ञाता रहो, मध्यस्थ रहो। इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास

प्राण और विकल्प भी आयें तो भी आत्मा की पकड़ को छोड़ना नहीं। आत्मभाव की पकड़ को छोड़ना नहीं। विकल्पों के प्रवाह में डूब गये तो अनन्तकाल तक भटकना होगा। युक्ति से निकल जाना है। इसलिए इसका अवलम्बन आत्मभावना है। 'आत्मा है वही मैं हूँ।' प्रयोग यदि सही है तो सही लाभ होता है। प्रयोगवीर से कला प्राप्त कर के समझपूर्वक प्रयोग करें।

'कर विचार तो पाम'

298. २९८ – आत्मनिर्णय में कोई कसर न रहे इस हेतु से दूर करते करते, हटाते हटाते जो शेष रहे वह आत्मा है। भक्तिमार्ग की जो श्रेणियाँ हैं – सीढ़ियाँ हैं उनको पकड़ कर ऊपर जाना है और फिर छोड़ देना है, छूट जायेंगी। इसलिए ज्ञानियों ने निराकार उपासना नहीं, साकार उपासना बतलाई है। एकदम Jump – छलांग लगाने से तो गिरेंगे और हड्डियाँ टूट जायेंगी।

299 २९९ – समझदारी के बिना धर्म का प्रयोग करनेवालों ने इसी अधर्म का प्रसार किया है अर्थात् वाड़ाबंधी (सम्प्रदायवाद) मतवाद आदि बहुत पैदा किये हैं – फैलाये हैं। वे अपना और दूसरों का समय बरबाद करते हैं। इसलिए धर्म का प्रयोग समझदारीपूर्वक करें।

सहजात्मस्वरूप परमगुरु

स्वरूप 300, ३०० अपने स्वरूप में भूल न हो जाये इसलिए परमगुरु में भी नज़र रखने की बात कही है। स्वरूपानुसन्धान बिना का जो परमात्मा का ध्यान है वह टिकता नहीं है। स्वरूपानुसन्धान

-पूर्वक परमात्मा का ध्यान करना चाहिए ऐसा कहा गया है। बहिरात्मा हो कर परमात्मा का ध्यान नहीं होता इसलिए अन्तरात्मा हो कर परमात्मा को समर्पित हो जायँ तो हमारी प्रभुत्वशक्ति के हम मालिक बन जायेंगे, निर्भय-निर्विकल्प हो जायेंगे।

रूपावलोकन दृष्टि से स्वरूपावलोकन दृष्टि प्राप्त होती है -

301. ३०१ जिस जिस भावना की सिद्धि हुई वह प्रत्येक भावना साकार होती है। वचन के माध्यम से कही न जा सकें इतनी सारी विशेषताएँ प्रगट होतीं हैं। इन सब को हटाते हटाते जो शेष रहे वह है आत्मा शुद्धात्मा।

"आत्मा सत् चैतन्यमय सर्वाभासरहित
जेथी केवळ पामीए, मोक्षपंथ ते रीत।"

इन शब्दों को हृदयस्थ करें, इसे ही लक्ष में रखें, यही पुरुषार्थ करें।

302. ३०२ - मार्गानुसारिता के उपादान लक्ष से रहित हो कर आज के अधिकांश उपदेशक उपदेश देते हैं। अनन्त कालचक्र में यह हुंडा अवसर्पिणी काल आता है। जो अति कठिन काल आज गुजर रहा है उसमें मूल मार्ग को समझ कर बात करनेवाले क्वचित् ही सुनने को मिलेंगे।

303. ३०३ - सत्पुरुष तथा सत्पात्रता की सहकारीता के बिना कार्यसिद्धि नहीं होती। समाज बुझे हुए दीपकों के आश्रय में फँसा हुआ है। इस बात का दुःख होता है। हमें तो स्वयंज्योतिस्वरूप प्रगट ज्योत परम कृपाळु देव

मिले हैं इसलिए ध्यान तो उनकी ओर ही रखना है। चित्त प्रवाह को वहीं जोड़ कर रखना है। उसी के आधार पर ज्योति प्रगट होगी।

304. 304 – 'जो सर्व को जानता है वह आत्मा है।' वह स्वयं के ज्ञाता-द्रष्टा तत्त्व को अक्षुण्ण-अखण्ड रखता है अतः शान्त रहता है। जो सर्वभाव को जानता है वह आत्मा है।' उपयोगमय आत्मा है। उपयोग अर्थात् सजग प्रयोग चेतना का उपयोग वही प्रयोग है। जड चेतनाशून्य है। आत्मा उपयोगलक्षणा है। समाधि अर्थात् मन का शान्त होना-मन की पीड़ा का शान्त होना। उस स्थिति में आनन्द की गंगा उफनती रहे-प्रवाहित होती रहे। हठयोगी को समाधि नहीं कह सकते। श्वास को केवल रोकने से तो अकुलाहट होगी, अतः उसे समाधि नहीं कह सकते। वास्तविक समाधि में ध्यानाग्नि प्रगट होती है और संवरपूर्वक निर्जरा होती है और उतना यह जीव मुक्त होता है।

305. 305 – समाधिसुख दूसरों को पीड़ा दे कर नहीं आता है और इसी कारण से स्वयं को भी पीड़ा नहीं होती है। "अव्याबाध सुखमय समाधिस्वरूप आत्मा है।" ऐसी आत्मा को परम कृपालु देव ने अपनी आँखों से देखा है। 'आत्मा है, अत्यन्त प्रगट है। भ्रम दूर हो जाने के पश्चात् आत्मा अत्यन्त प्रगट, निकटतम अभिन्न है। इससे अधिक निकट और कुछ भी नहीं है। परदे को हटा कर देखना आवश्यक है। दृष्टि साधकीय जीवन की ओर होनी चाहिए तो अवश्य दर्शन प्राप्त होंगे। जो स्वसंवेदन में दृष्टि स्थिर करता है वह इस देहरूपी मन्दिर में ही अपने आपको जान सकता है क्योंकि

आत्मा स्व-पर प्रकाशक है, इसलिए
दृष्टिगोचर होती है। अनुभूत होता है-
उसका अनुभव किया जा सकता है!
जानने की जो क्रिया चल रही है
उसमें जो जाननेवाला है - होता है
उसे जानें यह स्वसंवेदन है।

306. ३०६ - देखने - जाननेवाले को - दृष्टा-ज्ञाता
को स्मरण में रखें, उसमें लीन हो
जायें। बाहर मत देखिए - तो स्वसंवेदन
का अनुभव होगा। इन्द्रियों के प्रति
वृत्ति को जोड़कर रखने से तो विष का
काम होता है।

307. ३०७ - जो मरे नहीं वह आत्मा। नमृत:
अमृत:। आत्मा अमृत है। सुधा अर्थात् अमृत।
सुधारस अर्थात् अमृतरस। मुखरस जडरूप सुधा है।
वह सत्यसुधा नहीं है।

308. ३०८ - स्वसंवेदन से वृत्ति अपनी ज्ञायकसत्ता को
स्पर्श करती है। भाई! केवलज्ञान की
इससे सरल अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी। अद्भुत
रीति से बतलाया है श्री परम कृपालु देव ने।

309. ३०९ - चतुर्थ गुणस्थानक से मोक्ष तथा केवलज्ञान
का प्रारम्भ होता है यह बात विस्मृत हो गई
है। इसे परम कृपालु देव ने उद्धार के रूप में
प्रस्तुत किया है। दोषों से सर्वथा मुक्त हो जाना
उसे मोक्ष कहते हैं और मुक्त होना तो
सम्भव है। दोषमुक्त बना जा सकता है।
इसलिए आज जो प्ररूपणा हो रही है
वह एकान्तिक हो रही है। वह हितरूप नहीं
है। मोक्ष का स्वरूप दृष्टि में रख कर
आरम्भ से मोक्ष की प्ररूपणा होनी चाहिए।
क्योंकि चतुर्थ गुणस्थानक से उसका अनुभव
होने लगता है अर्थात् मुक्तदशा की प्राप्ति
का आरम्भ होता है।

310. ३१० - आत्मा अत्यन्त प्रगट है। परम

कृपालु की यह कैसी दशा होगी! अनुभूति के बिना ऐसे उद्‌गार नहीं निकलते।

311 ३११ – सर्वप्रथम अपने आपका अस्तित्व है। अन्य सब कुछ बाद में है। त्रिकालिक उपस्थिति का स्वीकार और स्मृति रखनी चाहिए। और अगर स्थिरता आ गई तो नज़र में आ जायेगा कि – है, आत्मा है। ज्ञानियों ने जैसा कहा ऐसा प्रगट है। विश्वास रखना चाहिए परम गुरु पर – उपादानरूप विश्वास। निमित्तरूप विश्वास श्री सद्‌गुरु। निमित्तरूप विश्वास को कारणभाव दें। निःशंक रहें तो हमारी प्रवृत्ति हो सकेगी। और वह अन्तर्मुहूर्त काल तक हो गई तब अनुभव हो जायेगा आत्मा का, अपने आपका। प्रत्येक वस्तु कार्यकारणन्याय से समझनी होगी। जानने की क्रिया ज्ञान–स्वरूप है और वही आत्मा है, परमज्योति–पिण्ड है।

312 ३१२ – शून्य होने की जो बात है वह विकल्पों से शून्य होने की बात है, आत्मा को भुला देने की बात नहीं है। औषध विचार ध्यान जड तत्त्वों के विचार की मना है। आत्मविचार की मना नहीं है।

313. ३१३ कृपालुदेव ने भ्रान्तिरोग को मिटाने की जो औषधि बताई है – विचार–ध्यान, सो आत्मविचार में लग गये तो अन्य विचार अपने आप बन्द हो जायेंगे। इसलिए स्वात्मविचार को अवलम्बन बनाना चाहिए। जिस प्रकार नज़र अपने घर में लगा ली तो फिर बाहर कौन आता है, जाता है इसका पता ही नहीं होता, उसी तरह जब आत्मविचार होगा तब अन्य विचार छूट जायेंगे।

314 ३१४ – अन्तरंग विचार के माध्यम से सद्‌गुरु ने जो अमृतधारा बहाई है उसे हम पीते रहें। इसे हम निंद में भी पी सकते हैं – आत्मविचार के

द्वारा। और इसलिए मन्त्र-स्मरणधारा को निरन्तर चालू रखना है, और यही आत्मा का स्मरण है।

सहजात्मस्वरूप परमगुरु 'इस मन्त्र का अर्थ समझ कर स्मरण करना चाहिए। अर्थ का चिन्तन न करें तो वह निरर्थक है। 'उपयोग-परम औषध है।' 'उपदेश'

'ते आत्मा नित्य छे'।

315. ३१५- शरीर में आत्मबुद्धि जिसकी है वह स्वयं को मृत्युधर्मा मानता है, लेकिन आत्मा तीनों काल अनुत्पन्न होने के कारण अविनाशी है - 'आत्मा अनुत्पन्न अमिलनस्वरूप है।'

316. ३१६ - यह शरीर मृत्युधर्मा है। सुबह के समय तैयार किया गया अन्न शाम को बिगड़ जाता है तो फिर यह शरीर बिगड़ जाय उसमें क्या आश्चर्य? क्योंकि यह शरीर भी तो इसी अन्न से बड़ा होता है।

317 ३१७ - आत्मा अनुत्पन्न और अमिलन स्वरूप होने से नित्य है। हमें मृत्यु का भय नहीं रखना चाहिए। मृत्युधर्मा मैं नहीं हूँ। मैं हूँ अकेला। मैं किसीका नहीं और शाश्वत पदार्थ हूँ यह दृढ़ता हो गई तब भय-कम्पन नहीं होगा। अगर कम्पन होने का मौका आया तो ब्रेक लग जायेगी। शुद्धात्मा को किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं और वह अपने आप में परिपूर्ण सुखी है। हम भी यदि स्वयं को इसी रूप में पहचान लें तो हम भी सुख का ही वेदन करेंगे।

318 ३१८ - दृष्टि अगर दृश्यप्रपंच में रही तो सब दोष उत्पन्न करनेवाले हम ही हैं। लेकिन दृष्टि अगर भीतर रहे तो कोई दोष नहीं होता। इसलिए हम ही

अपने सुखदुःख के लिए जिम्मेवार हैं, क्यों कि अपने आत्मप्रदेश में हम ही आग उत्पन्न करते हैं, और अक्त दोष होता है। अतः हमारे चैतन्य प्रदेश में हम आग न लगायें। दृष्टि बाहर है इसलिए क्रोधादि का कर्ता बनते हैं और कर्मफल को भोगते हैं। यह भोक्ता तो शरीर है, आत्मा नहीं है। लेकिन शरीर में आत्मबुद्धि होने के कारण ऐसा होता है कि मुझे दुःख हो रहा है।

319 ३१९ – परम ज्योत से एकाग्रता की बाती प्रज्वलित करेंगे तो ज्योत से ज्योत जलेगी ज्ञान की रोशनी प्रगट होगी। इससे शक्तिरूप में जो अपनी चेतना है वह जागृत हो जायेगी। जो बीजरूप में है वह सत्तारूप में और विकसित होती है। व्यक्तिरूप में।

320 ३२० – व्यक्तव्य धर्म के माध्यम से जितना कहा जाता है उतना ज्ञानियों ने कहा है। जड़ के भी प्रत्येक पदार्थ में व्यक्तव्य और अव्यक्त गुणधर्म हैं। जैसे कि घी। स्वाद बताओ। ज्ञानियों पर परिपूर्ण विश्वास कर लेना चाहिए क्यों कि जैसी आत्मा है ऐसी ही इन्होंने देखी है, उसका अनुभव किया है और स्वयं को मार्ग दिखाया है।

321 ३२१ – श्री सत्पुरुष विश्वास करने योग्य हैं। पर्याय दृष्टि न दीजिए। अपनी चेतनाशक्ति में जो योग्यता है वह है उपादान कारण। श्रद्धा अर्थात् भवानी-पार्वती, पर्वत के समान अडोल, विश्वास अर्थात् शंकर – महात्मा तुलसीदासजी ने कहा है।

कारण सामग्री के बिना कार्यसिद्धि होती नहीं है। दोनों चाहिए। – निमित्तसामग्री और उपादानसामग्री।

322 ३२२ – विश्वास वास्तविक रूप में हम प्रगट

कर के तो सिद्धि प्राप्त होती है। इसलिए परम कृपालु पर वास्तविक विश्वास रखना चाहिए।

323 ३२३ – प्रतिकूल परिस्थितियाँ साधक के जीवन में ज़रूरी हैं। इसमें से पार होने का बल मिलता है। कसौटी होगी तो अपनी नज़र ऊँचे लगेगी और आगे बढ़ जायेंगे। हम ऐसी परिस्थिति में घबरा जाते हैं और निमित्त पर दोष लगा देते हैं। सोना आग में शुद्ध होता है तो फिर घबराने की क्या बात है? इस रीति से कसौटी में से पार उतरना है। आत्मशुद्धि के लिए विश्वभर की प्रतिकूलताओं का आना आवश्यक है क्यों कि आत्मा को निर्मल, शुद्ध, अत्यन्त शुद्ध बनाना है। महापुरुष जानबुझ कर ऐसी परिस्थितियों के सामने गये हैं। दुःख शरीर को होता है, आत्मा पर उसका प्रभाव नहीं होता। साधना के मार्ग पर जानेवाले को ऐसी परिस्थिति का सामना करना ही पड़ता है।

324. ३२४ – जिनके घर में (आत्मप्रदेश में) ज्ञानरूपी प्रकाश फैला हुआ है, ऐसे ज्ञानी को अपने हृदयमन्दिर में बिठा दें तो (अपने हृदय में भी) प्रकाश हो जायेगा। दूसरे का दीपक अगर अपने घर में लायें तो क्या प्रकाश नहीं होता? होता है। उसी तरह – यह उपाय है और इससे काम बनेगा।

325 ३२५ – घर में रोशनी प्रगट होने पर स्वभाव-समाधि स्थिति होती है। 'सर्वथा अनुभूति-धारा में स्थिर होना मोक्ष है' शरण और स्मरण कायम बनाने से सर्वांग प्रकाश होता है। निवृत्तिकाल में प्रयोग सफल हो जाय तब प्रवृत्तिकाल में यह प्रयोग करें तो यह भी सफल हो जायेगा।

326 ३२६ – जिसकी आत्मा की लक्ष धारा अखण्ड बनी रहे तब साधुदशा मानी जाती है।

अनुभूतिधारा के लिए, जो कमर कसें वह साधु। सच्चे आचार्य - उपाध्याय तो तीन भव में मोक्ष प्राप्त कर लें।

327 ३२७ - 'सर्वथा स्वभाव परिणाम वह मोक्ष।' 'केवल लगभग भूमिका स्पर्शी ने देह वियोग रे' यहाँ तक तो पहुँचे हैं परम कृपालु! कितना पुरुषार्थ!! महान पुरुषार्थ किया है। वे सचमुच ही वन्दनीय हैं। त्रिकाल नमस्कार हो!

328 ३२८ - शुद्ध निश्चयनय से स्वभाव परिणाम का कर्ता और अशुद्ध निश्चयनय से परभाव परिणाम का कर्ता। परसापेक्ष बात हो तब परभाव कहा जायेगा और स्वसापेक्ष बात हो तब स्वभाव कहा जायेगा।

329 ३२९ - अशुद्ध निश्चयनय से रागादि का कर्ता है। कषाय आदि अशुद्ध निश्चयनय से, अकषाय आदि शुद्ध निश्चय नय से। भ्रान्ति-रूप अन्धकार में। अन्धेरे में भ्रान्ति ही होती है। राग आदि का कर्ता स्वयं है उसी प्रकार अराग आदि का कर्ता भी स्वयं ही है। छः पद का समाधान हो जाय तो ही निर्विकल्प उपयोग में टिक सकता है। आत्मा कर्ता है। कर्ता अर्थात् जवाबदार।

330 ३३० - अपने सुखदुःख के लिए स्वयं ही जिम्मेदार है। जीव स्वतन्त्र है, परतन्त्र है ही नहीं। क्योंकि अपना तन्त्र खुद के अधीन है। उसके अनुसार स्व के अधीन हो कर व्यवहार करे - जीये - तो आझाद हो कर घूम सकता है। अन्य की सीमा में जायेगा तो बन्दी बनेगा। इसलिए जीव अपनी स्वतन्त्रता में रहे तो आझाद और परभाव में जाय तो फिर बन्दी - कैदी बनता है। चैतन्यमर्यादा में रह कर अपना तन्त्र चालु करे तो सहज रह सकता है। जीव खुद को जवाबदार है, अन्य को जवाबदार नहीं। आत्म-मर्यादा में रह कर अपना तन्त्र चालु करता है तो वह स्वतन्त्रता है और परमर्यादा में

रह कर करे तो वह परतन्त्रता है।

331 ३३१ - प्रभुत्वशक्ति बीज-वृक्ष न्याय के अनुसार है। वृक्षरूप में प्राप्त करने के लिए अगर मेहनत करें तो हो सकता है। इसलिए कहा है: 'स्वस्वरूप का कर्ता'। अन्यथा वह तो अविनाशी है, अनुत्पन्न है। परन्तु बीजरूप शक्ति है उसे वृक्षरूप बनाना है, इसलिए वृक्षरूप याने स्वस्वरूप का कर्ता कहा है। 'बीज केवल-बीजरूप। सम्पूर्ण केवली वृक्षरूप।' शुद्ध निश्चयनय से जिनकी स्थिति है अपनी आत्मा की उन्होंने अपनी आत्मा को देखा और अन्य आत्मा में अव्यक्तरूप से देखा। उस अव्यक्त शक्ति को व्यक्त बनाने हेतु कहा: 'निज स्वरूप का कर्ता।' आत्मा को परमात्मा किसने बनाया? खुद ने ही बनाया। आत्मा तो अनुत्पन्न है। परन्तु आत्मा में से परमात्मा बनाना है ना? वह कौन बनायेगा? जो परमात्म--स्वरूप बने हैं और उन्होंने जो दिशामार्ग बताया है उसके अनुसार पुरुषार्थ करें तो सम्भव है।

332 ३३२ - कर्ता-कर्म अधिकार के विषय में गहराई से चिन्तन करने से स्थिरता आ जाती है। स्वयं के लिए ही करना है। जिस मार्ग पर जाना है उस मार्ग का पूर्ण रूप से अन्दाज़ - ख्याल होना चाहिए। समझ सही होनी चाहिए। जिस मार्ग पर नहीं जाना है उसके विषय में केवल उतनी ही जानकारी होनी चाहिए कि इस मार्ग पर नहीं जाना है। इतना पर्याप्त है।

333 ३३३ - शास्त्रों की रचना लड़ने-झगड़ने हेतु-विवाद करने हेतु नहीं की गई है, बल्कि भवरोग टालने हेतु की गई है। और इसके अतिरिक्त भी ऐसा बहुत कुछ है जो आत्मज्ञान प्रगट कर सके। हमें ऐसा ही करना है। परम कृपालु ने हमारे लिए बहुत कुछ ग्रहण कर के हमें सौंपा है। हमारी आत्मा के हेतु लक्षपूर्वक उसीका उपयोग करना है।

334 ३३४ - हम भाग्यवान हैं कि कृपालु देव द्वारा तैयार किये गये मक्खन को खा कर हज़म करना है। बिना ! उसे आत्मसात् करके आगे बढ़ो। अनुभूति की पर्याप्त सामग्री है। श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों के सम्पूर्ण शास्त्रों का दोहन कर के मक्खन बनाया है। मक्खन कितना निकल सकता है? अतः उनकी ये कृतियाँ मक्खन स्वरूप हैं।

335 ३३५ - हम अज्ञान दशा में अज्ञान भावों के कर्ता और ज्ञानी ज्ञान भावों के कर्ता। क्रियाशक्ति होने से कर्ता होता है। अनन्त वीर्यगुण को क्रियाशक्ति कहते हैं।

336 ३३६ - सारे विश्व को जानने की ताकत है अपनी चेतना में। स्वहद में स्थिर होने से होता है आत्मदर्शन। और आत्मदर्शन में विश्वदर्शन भी समा जाता है। दर्शनगुण तो निर्विकल्प है, परन्तु ज्ञानगुण सविकल्प एवं निर्विकल्प होता है।

337 ३३७ - प्रयोजनभूत ग्रहण करनेवाले सुमति के साथी हैं। अतीन्द्रिय दृष्टिवाले को बाहर देखने का समय ही नहीं है। बाहरी झंझट में पड़े तो क्या प्राप्त होगा? कचरा! अतः वे उस ओर दृष्टि भी डालते नहीं हैं।

338 ३३८ - आत्मा ही जिनकी दृष्टि में है उसे अन्यत्र देखने का अवकाश ही प्राप्त नहीं होता। परम कृपालु की जो भी शिक्षा है वह अपने संशोधन के लिए उपयोगी है, उचित है, उसे आत्मसात् कर लें।

339 ३३९ - "मैं आत्मा हूँ" यह जो स्मरणीय बात है उसको तो ध्यान में रखते नहीं और अन्य अनेक बातों का ध्यान रहता है यह बेहोशी की अवस्था है। और उसमें विषय-कषाय का कर्ता बनता है।

340 ३४० - भलाई करनेवाले के साथ दुनिया भलाई करेगी। जब तक स्वयं पर दृष्टि नहीं रहती

तब तक पुण्य और पापरूपी जेल तो बढ़ती ही रहेगी। अनेक शरीर मिलेंगे। पुण्य और पाप, शुभ अशुभ ऐसी सादी और सख्त सजाएँ हैं जो मिलती हैं और अपने स्वरूप को देखते रहें तो कोई अपराध नहीं होता।

'दर्शन् - ज्ञान - रमणता सनातन् धर्म है।'

341. ३४१ - अपने स्वरूप में स्थिर होना। अर्थात् अपने स्वरूप की खेती करना वही धर्म है। धर्म अर्थात् मन की धरपकड़। अन्यथा तो शुभाशुभ प्रवृत्ति रहती है, और अच्छे-बुरे कर्म होते हैं।

342 ३४२ - अनुभूतिधारा से नीचे उतरना ही प्रमाद है। लक्ष दो प्रकार का काम करता है। भीतर का भी और बाहर का भी। अनुभूति की अनुपस्थिति में लक्षधारा रहती है।

343 ३४३ - अनुभूतिधारा में प्रवेश किये बिना सम्यग् दर्शन होता नहीं है। इसलिए दिगम्बर शास्त्रों में सातवें गुणस्थानक में निश्चित रूप से समकित होता है ऐसा बताया है और यह भी दिगम्बर मुनि को ही! कपड़े वालों को नहीं ऐसी मान्यता है।

344 ३४४ - प्रतीतिधारा अखण्डित हो गई, लक्षधारा अखण्ड हो गई और अखण्ड करने में जो लगे हैं वे साधु हैं।

345 ३४५ - हमें तो स्व के भान में रहना है अर्थात् शरीररूपी गाड़ी को और अपने आपको मिला नहीं देना है। अलग अलग स्पष्ट अनुभव करना है। 'मैं आत्मा हूँ', और कुछ नहीं हूँ, और कुछ करनेवाला नहीं हूँ। देखने-जाननेवाला केवल 'मैं आत्मा हूँ'।

346 ३४६ - लड़ाई-झगड़ा अज्ञान दशा में ही होता है। जो ज्ञानवान हैं, जिनके हृदय में जड-चेतन भिन्न आ गये हैं, वे किसी भी सम्प्रदाय के हों, लड़ाईझगड़ा नहीं करते, क्योंकि इनके पास अज्ञानरूपी हथियार नहीं होता।

347 ३४७ – चैतन्य की निस्तरंग स्थिति वही धर्म है। यही अबंध दशा है। मन का अमन हो जाना धर्म है। अपने स्वरूप को देखने से रागादि शान्त हो जाते हैं, उठते ही नहीं।

348 ३४८ – 'हरदम अपने आपका भान रख कर चलें' यह स्वभाव परिणमन है। यह जगनाटक को देखने का टिकट हमारे पास है। सिर्फ देखना – जानना है। लेकिन हम इसमें नाचने लगते हैं, इसलिए सब सजाएँ मिलती हैं।

349 ३४९ – जाननेवाले को जानने के लिए केवल अड़तालीस मिनट स्थिर हो जाना है, हो जाओ। फिर आनन्द की गंगा बहने लगेगी। यह अवश्य करने योग्य है। भावि में संसार बढ़ाना या मिटाना इसके लिए हम आझाद हैं। किन्तु भूतकाल में जो कर्म किये उसकी सज़ा तो हमें भुगतनी ही पड़ेगी। इस विषय में हम आझाद नहीं हैं। भाविकाल के लिए जन्म-मरण खत्म करना चाहें तो इसमें हम आझाद हैं। परम कृपाळु ने मार्ग बताया है, सर्चलाइट धर रखी है। इनके सहारे यदि हम स्थिरतापूर्वक चलेंगे तो हम अवश्य आत्मानुभूति करेंगे और छुट्टी मिल जायगी। 'उपयोगशून्यता अन्धत्व है।'

350 ३५० – जो अहम-बुद्धि शरीर में है उसे यहाँ से हटा कर आत्मा में जोड़ना होगा। ड्राइवर तत्त्व के ऊपर ही नज़र रखें। इसको पहचान लिया तो फिर शान्ति ही शान्ति है। जो अलग अलग है उसको एक रूप में देखने से अहंमम-बुद्धि होती है। नहीं तो घर में रोशनी होती है, और इसलिए जिन्होंने आत्मा को देखा है ऐसे महात्मा के ऊपर विश्वास रखना चाहिए।

351 ३५१ – परम कृपाळु जो बताते हैं वही सत्य है, इतना विश्वास रखना ही होगा। तब काम बनेगा। सद्गुरु से सद्विवेक का प्रकाश ले कर अपनी धारणा बदलनी है। जड को जड और चेतन

को चेतन समझना है और अनुभूति करनी है। मन्त्र शब्द के अर्थ को पकड़ो और स्वरूपानुसन्धान-पूर्वक चिन्तन करो। अर्थ नहीं पकड़ा तो अनर्थ हो जायेगा, क्योंकि शब्द तो लय होता है और अर्थ रहता है। महापुरुषों ने शब्द के माध्यम से जो कहा वह शब्द तो गया, और अर्थ रह गया। इसको पकड़ कर साधना करनी होगी।

352 ३५२ – कोई भी देश हो, कोई भी समाज या राष्ट्र, कोई भी कुटुम्ब और कोई भी व्यक्ति, सिर्फ दृष्टि जिनकी तत्त्वज्ञान श्रेणी से भगवान में लगी हुई है उनके अतिरिक्त सभी स्थानों में केवल अशान्ति की ज्वाला ही धधकती रहेगी। आत्मतत्त्व का भान खो कर के जो रहते हैं – जीते हैं उनके दिल में तो अशान्ति ही रहेगी। आत्म भावना को स्थिर बना कर जो भगवान की भक्ति करते हैं उनको शान्ति प्राप्त होगी। शान्ति का उपाय है जागृतिपूर्वक सत्संग। जिनमें आत्मज्ञान है ऐसे सत्पुरुष का संग ही सत्संग है।

353 ३५३ – सद्गुरु, सत्संग, सत्शास्त्र, सद्विचार, संयम आदि मोक्ष के साधन हैं। साधन बताते हैं कृपालु। परम कृपालु मानों अंगुली निर्देश करके राह बताते हैं।

354 ३५४ – ज्ञेयों से असंग अपने ज्ञान को ही जानने का प्रयत्न रखना यह केवलज्ञान की कुंजी है।

355 ३५५ – त्रिलोकीनाथ को हृदयमन्दिर में बिठाया फिर भय किस लिए? उल्लास बढ़ेगा और उल्लासरूप वायु से बादल हटने लगेंगे और ज्ञानप्रकाश होगा।

356 ३५६ – अंधेरे को देखनेवाला अंधेरे से भिन्न है और प्रकाश को देखनेवाला भी प्रकाश से अलग है। ये सारी बातें बतानेवाला चाहिए या नहीं? चाहिए। और ये हैं सद्गुरु। आत्मा का नाम सद्गुरु है, शरीर का नहीं। शरीर में जो भव्यात्मा विराजमान है, वे सद्गुरु हैं। आत्मसमाधि

मार्ग की जानकारी जिसके पास है, जो निष्णात हैं, वही हैं सद्गुरु।
आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं।
'कोई भी वेष भले हो, वे मुनि हैं। जिन्हें विश्वरहस्य का समाधान हो गया है वे सद्गुरु हैं।

357 ३५७- जिन्होंने पारमार्थिक समाधान नहीं पाया है वे द्रव्यलिंगी हैं, वेषधारी हैं। मुनि तो वे हैं जिनका मन शान्त है। सद्गुरु का लक्षण - आत्मज्ञान। आत्मज्ञान का मतलब अंतरंग आंखवाला। 'आगमधर मुनि समकिति।'

358 ३५८- सम्प्रदाय शब्द बुरा नहीं है, सम्प्रदायवाद बुरा है।

359 ३५९ - सम्प्रदाय अर्थात् सत्पात्र में देना।

360 ३६० - आजकल सम्प्रदाय के रूप में जो वृत्ति है वह ठगनेवाली वृत्ति है, आत्मवंचना है। खुद अन्धा क्या रास्ता दिखायेगा? आनन्दघन बाबा ने यह देख कर चिकित्सा कर दी है। सुनी सुनाई बातों पर नहीं चलते। भीतर प्रयोग कर के अन्तर में चेतना को स्थिर करते हुए चलते हैं वे ज्ञानी हैं।

361 ३६१ - अपूर्व वाणी : सिद्धान्त का जो प्रतिपादन करे वह परस्पर बाधक न हो। स्याद्वाद दृष्टि से शायद ऐसा लगे लेकिन समवादी हो। कृपालु देव ने जो कलम चलाई (जो कुछ प्रतिपादन किया) उसमें मूल वही बात है - परंतु विशेष वीतरागता प्रधान, स्वावलम्बी, अति गाम्भीर्यपूर्ण और गहनतायुक्त दिखती है - प्रतीत होती है। स्वयं को उन्होंने परमात्मातुल्य बताया है।

362 ३६२ - मनःपर्यव - इच्छारहित रूप से दूसरों के भावों को जान लिया जाय वह मनःपर्यवज्ञान है। परम कृपालु ने उसका अनुभव किया है। ऋण चुकाते चुकाते आत्मप्रकाश में वृद्धि करते जाते थे। और जो कुछ उन्होंने हमें सौंपा है वह हमारे लिए पर्याप्त है। उपाधि में - स्वयं भी उपाधि के झंझटों में फँसे हुए और जो मिले वे भी

व्यवसायी। अगर कोई कसौटिया मिले होते तो बहुत कुछ मिल सकता था।

363 ३६३ - मोक्षप्राप्ति के मार्ग में सर्वप्रथम सद्गुरु की आवश्यकता होती है। उनका सत्संग वही सत्संग। इसलिए उनकी निश्रा में - संग में रहना चाहिए। 'चेतना का चेतन में जुड़ना' यह कार्यरूप 'सत्संग'। सद्गुरु का संग यह निमित्तरूप सत्संग है। उनकी निश्रा में रह कर, कला सीखने के पश्चात् चेतना का चेतन में समा जाना - लय हो जाना यह कार्यरूप सत्संग है। सद्गुरु का संग न करें तो लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता। सद्गुरु के परिचय में आयें तब तब उनके पास से कला प्राप्त होती है अथात् सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। सत्संग में जब श्री सद्गुरु बोध की गंगा बहाते हैं तब उनके बोध में से कितना याद रहता है? जो याद रहता है उसे पत्रारूढ़ कर के (कागज़ पर Note कर के) बाद में उसका चिन्तन करना यह भी सत्संग है।

'साधक की रक्षा करे वह शास्त्र।'

364 ३६४.- ज्ञानियों की वाणी इसी प्रकार पत्रारूढ़ (लिखित रूप में) अथवा शास्त्ररूप में प्राप्त हुई है। उस वाणी का पठन करना - चिन्तन करना यह भी सत्संग है। वाणीप्रवाह बह रहा हो वह भाववाणी है, पत्रारूढ़ (लिखित स्वरूप में) हुई वह स्थापनावाणी है।

365 ३६५ - परम कृपालुदेव ने मोक्षमार्ग में सद्विचार को स्थान दिया है। परन्तु हम अगर विचार ही न करें तो? जिस प्रकार के चिन्तन में आत्मा ही मुख्य रूप से प्रवर्तमान है उस प्रकार के विचार सद्विचार हैं। सद्विचार के अवलम्बन के बिना अन्य विचार अर्थात् असद्विचार हट नहीं सकते। अर्थात् यह सम्भव नहीं है।

366 ३६६ - जब गुण और गुणी की अभेद स्थिति हो जाय तब: विकल्प छूट जायेंगे। साध्य तो निर्विचार दशा है, ठीक है। परन्तु छलांग लगा कर वहाँ पहुँचना सम्भव नहीं। अतः गुरुगम के द्वारा सद्विचार की आवश्यकता है।

367 ३६७ - स्वसंवेदन प्रगट अनुभव में है। वचन कहा है परम कृपाळुदेव ने कि—
'सत्साधन समज्यो नहीं त्यां बन्धन शुं जाय?'
जो साधन सत् का ही दर्शन कराये, हमारे लक्ष को उसकी ओर ले जाये वह सत्साधन है। परन्तु सर्वप्रथम सद्गुरु। बोध, सत्शास्त्र इनके लिए जो चिन्तन वह सद्विचार - ध्यान।

368 ३६८ - परिवर्तित होनेवाले पर्याय असत् हैं। इसलिए पर्यायों के विचार असद् विचार हैं। उसका निरोध करना है। उसकी मना कर रहे हैं। 'पर्यायदृष्टि न दीजिये', 'औषध विचार-ध्यान', मूल द्रव्य को लक्ष में रख कर जो विचार उठते हैं वे सद्विचार हैं। सारे आकार तो अणु-परमाणु के हैं। वे सम्मिलित होते हैं और बिखर जाते हैं। पर्यायान्तर होते ही रहते हैं, इस कारण से उसका निरोध है।

369 ३६९ - मूल द्रव्य को देखिए। वह सद्विचार। जिस प्रकार घड़े को मिट्टीरूप में देखें, सुवर्ण को भी मिट्टीरूप में देखें, इस घूमतेफिरते शरीर को भी मिट्टीरूप में देखें, उसी प्रकार मूल द्रव्य को भी देखें। और ऐसा करने के लिए विचार तो चाहिए और वह विचार है सद्विचार। यह सद्असद् के विवेक की बात हुई।

370. ३७० - दृष्टि समक्ष मूर्तिरूप में परम गुरु और वह आत्मा उनके समान सहजात्मस्वरूप। उसके अवलम्बन से मन्त्र-स्मरणधारा का स्मरण विष को दूर करता है। (जिसकी देखने से बेहोशी आये यह विष है। परम गुरु के सहारे किये गये मन्त्रस्मरण के द्वारा जहर दूर हो जाने से आत्मा

का - अपनी आत्मा का भान होता है।

371 ३७१ - असद् विचारों का आधार है अज्ञान। सद्विचार का आधार है ज्ञान। सद्विचार उपादेय है, सार्थक चिन्तन है। जो आकार प्रकार दिखाई देते हैं उन्हें परमाणु के मूल रूप में देखने की आदत डालें। जानने के बाद उस पर स्थिर रहने से वह सद्विचार कहलाता है।

ज्ञानी के वचन सापेक्ष होते हैं।

'वचन सापेक्ष व्यवहार साचो...।'

केवल एकांगी वचन निरपेक्ष हैं। वे केवल संसार बढ़ाते हैं।

372 ३७२ - संयमादि : 'संयम' जिससे शान्त परिणाम प्राप्त हो वह संयम है।

यम अर्थात् उपकान्त, कान्त अर्थात् आत्मा, उप अर्थात् समीप। आत्मा के समीप बैठ जाना यह धर्म है। सम्यक् यम अर्थात् संयम। जिससे शान्त परिणाम हो उसमें चेतन और चेतना उपादान सामग्री है। यह जिससे प्राप्त किया जा सके वह निमित्तरूप सामग्री। उसमें द्रव्य मन तथा भाव मन का कंट्रोल वह है संयम। चेतना का चेतन में टिकना - मूल रूप में वह उपादानरूप संयम। इसके लिए जो नियमित प्रवृत्ति करनी होती है - स्वाध्याय, ध्यान - चेतनारूप करंट का उपयोग - अध्ययन करना उसे स्वाध्याय कहते हैं। स्वाध्यायबल को ले कर ध्यान करना और तद्रूप में स्थिर होना वह समाधि है।

373 ३७३ - यम : जीवनभर की ... जो प्रतिज्ञाएँ हैं उसे यम कहा जाता है और कुछ समय की - किसी कालविशेष की प्रतिज्ञाओं को नियम कहते हैं। यमनियमपूर्वक जीवन हो तब संयम बनता है।

374 ३७४ - जीवनभर प्रतिज्ञापालन की तैयारी न हो तो क्या करना चाहिए? तो उसके लिए अमुक समयमर्यादा पर्यंत नियम। अमुक समयमर्यादा पर्यंत जो नियमपूर्वक टिक रहे वह

समिति और बाद में गुप्ति। गुप्ति अर्थात् अपने स्वरूप को स्वयं में ही गुप्त रखना अर्थात् समाधि। गुप्तिकाल में समाधिदशा होती है, नियमकाल में ध्यानदशा होती है।

375 ३७५ – जो उपादान को जगानेवाला न हो ऐसा संयम बाधक बनता है। परन्तु अगर सद्गुरु की निश्रा प्राप्त हो जाये तो वे उपादान को जागृत करे ऐसी रीत बतायें। तब संयम भाव-संयम बनता है। श्रीसद्गुरु की कृपा से – सत्संग से द्रव्यसंयम भावसंयम में परिणत होता है।

376 ३७६ – शरीररूपी गाड़ी को इस प्रकार चलाना है कि नुकसान न हो और चेतनारूपी करंट केवल आत्मलक्ष में प्रवृत्त हो, आत्मलक्ष में प्रयुक्त हो।

377 ३७७ – शरीर, वाणी और द्रव्यमन – इनका संयम-पूर्वक उपयोग करना। लक्ष अगर शरीर, मन और वाणी के प्रति रहता हो, तो वह संयम नहीं है। शरीर और वाणी द्रव्य मन को ले कर काम करते हैं। परन्तु भावों में शुभाशुभ प्रवृत्ति न हो तो अपना और दूसरों का कल्याण होता है। परम कृपालु ने आत्मसाधन बताये हैं वे अत्यन्त गहराई से चिन्तन करने योग्य हैं।

378 ३७८ – भक्तिहीन ज्ञान शुष्क है, अर्थात् भक्ति से ज्ञान निर्मल होता है। ज्ञानी गुरु के पास से स्व-पर भावों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। अब आत्मा को प्राप्त करने हेतु भक्ति बलवत्तर साधन है।

'त्रणे योग एकत्वथी वर्ते आज्ञाधार--।'

यह भक्ति है।

379 ३७९ – ज्ञानमार्ग में अकेले केवलज्ञान की आराधना है। ज्ञेयों से भिन्न ऐसा ज्ञान जिसे प्राप्त है ऐसे ज्ञानी की आराधना करनी चाहिए। ज्ञानी की छबि को चित्तवृत्ति में स्थिर कर के परमात्मा के रूप में भक्ति करनी यही भक्तिमार्ग है।

380. ३८० – मन की चंचलता को स्थिर करने हेतु ज्ञानी की आज्ञानुसार योगमार्ग है। योगमार्ग क्रियामार्ग है। इसके बाद भक्ति द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। 'योगमार्ग एक कारखाना है।' क्रिया द्वारा चंचलता को स्थिर किया जाता है।

381. ३८१ – 'चैत्यवन्दन, देववन्दन आदि भक्तिमार्ग है।'

382 ३८२ – सामायिक आदि सभी छः आवश्यक, श्वासानुसन्धान आदि राजयोग पद्धति भी क्रियामार्गरूप में है।

'चित्तवृत्तिनिरोधः योग।'

383 ३८३ – सद्गुरु का योग यदि प्राप्त हो तो योग सफल हो सकता है। अन्यथा कोई रिद्धि सिद्धि में फँस कर वहीं अटक जाता है और संसार की वृद्धि करता है।

384 ३८४ – आरम्भ में अगर संस्कार न हो तो ज्ञानाभ्यास से मनुष्य अक्खड हो जाता है। इसलिए ज्ञान की आराधना भक्तिमार्ग के साथ होनी चाहिए। अन्त में अकेले ज्ञानप्राप्ति का ही ध्येय होना चाहिए, परन्तु ज्ञान को निर्मल करने हेतु भक्ति आवश्यक है।

मोक्षमार्ग का चिन्ह तो है 'सम्यग्दर्शनज्ञान – चारित्राणि मोक्षमार्गः।'

385 ३८५ – जिन = आत्मविजयी, कोपीन = वस्त्र। दिगम्बर आम्नाय में ये तीन प्रकार माने गये हैं: मुनि, एलक तथा क्षुल्लक। दिगम्बर आम्नाय में जो यह परम्परा कही जाती है वह सूक्ष्म है। पन्द्रह भेद से सिद्ध ऐसा जो कहा गया है वह बाह्य उदयानुसार है। अन्तरंग प्रकार तो एक ही है। उसमें कोई भेद नहीं है।

386 ३८६ – जितने विकल्प के भेद उतने दोष के भेद और उतने ही कर्म के प्रकार।

"जातिवेष नो भेद नहीं कह्यो मार्ग जो होय।
साधे ते मुक्ति लहे एमां भेद न कोय॥"

यह तीर्थंकर शैली है।

छुपाये वह मायावी है। अपने दोष खटके तो दूर करे ना?

"सच्चा मारग कौन बतावे,
सब अपनी अपनी गावे..."

भावक्षम, तापक्षम और मार्गक्षम - साधना के मार्ग के ये तीन विघ्न हैं। उनको हटा कर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। स्वरूपजागृति अगर हो तो भूल नहीं होगी, चोर प्रवेश नहीं करेंगे, चोर सता नहीं सकेंगे।

392 ३९२ — स्वच्छन्द परिणति:
जो ज्ञानी की आज्ञा, उनके द्वारा बताया गया मार्ग नथा ज्ञानी के प्रति अरुचि दिखाता है, अपने अपराध छुपाने के लिए प्रयत्नशील जीव ज्ञानी की बात सुनने के लिए तैयार न हो फिर भी कोई सुनाये तो वह अनर्थ कर बैठता है। आत्मदर्शन के बिना जीव अनेकानेक भव भटकता है। यह अज्ञानी जीव ∴ ज्ञानी पुरुष के प्रति क्रोधभाव से व्यवहार करे और उनकी आशातना करे तो अनन्त संसार बढ़ा देता है। परन्तु बाद में पश्चात्ताप करे तो थोड़ा फर्क पड़ सकता है।

393 ३९३ - जीव अनादि काल से उस मार्ग पर चला ही नहीं, डूबने के मार्ग पर ही चला है। आत्मा का भान रखने की शिक्षा मिलती हो, इच्छा भी हो तो भी उस मार्ग पर स्थिर न रह सके यह अनन्तानुबंधी कषाय की कृपा है। आत्मदर्शन न हो, अन्तर्चक्षु खुल न पायें इस दशा से बचने के लिए ज्ञानियों की शरण ले लो - उनको समर्पित हो जाओ। सत्संगरूपी चिकित्सालय है उसमें सत्पुरुष की शरण में चले जाओ। उनकी शरण में रहने से, उनकी आज्ञा का पालन करने से सभी दोष दूर हो जाते हैं। इस शरीर के ममत्व से मुक्त हो कर अन्य कोई चिन्ता रखें तो उसमें कोई बाधा नहीं। ममत्त्व भाव से करना यही अपराध है।

आध्यात्मिक जीवन में अनिवार्य है कि अपना
अज्ञान छोड़ कर ज्ञानियों से ज्ञान प्राप्त कर सारी
करो तो तृप्ति हो जायेगी।

३३४. २३४ - यह शरीर जो प्रेम लगाता है और
आत्मा के मार्ग में प्रेम नहीं लगाता वह युद्ध
के मैदान में टिक सकता है? मोहराजा के सैन्य
को कैसे जीत सकता है? शरीर आदि में जो
प्रेम है वह संसार में लगाता है। शरीर के
प्रति मोह है वह आत्मा के प्रति (दुश्मनी) अप्रीति को सिद्ध
करता है।

३३५. २३५ - सुवर्णधन जिसका जीवन है उसे तो पद
पद पर कसौटी आयेगी, इसे बार बार कसौटी पर
चढ़ा के देखा जायेगा। कसौटी सुवर्ण की होती है
पीतल की नहीं।

३३६. २३६ - परमात्मा से अभिन्न होना है तो जीवित
रह कर मरना सीखना पड़ेगा और सीख कर
ज्ञानियों के लिए जो अपना फर्ज है उसे अदा
करना पड़ेगा। शरीररूपी बकरे को आत्मज्ञान
की वेदी पर बलि चढ़ाना होगा। शरीर से प्रेम
हटा कर परमात्मा पर यह प्रेम न्योछावर
करना पड़ेगा तब वह उससे (परमात्मा से) मिल सकेगा
और आत्मा का दर्शन होगा।

३३७. २३७ - प्रेमधन जो है वह शरीर में डूब गया है इसे
बाहर निकाल कर भगवान में, भगवान के वचनों
में लगा देना होगा।

३३८. २३८ - आत्मा से अभिन्न होना है तो वह प्रेमधन
आत्मा में लगा देना पड़ेगा। निद्राकाल से जागृति-
-काल तक और जागृतिकाल से निद्राकाल तक
केवल शरीर की ही चिन्ता करते हैं और आत्मा
के लिए क्षणमात्र भी फुर्सत नहीं मिलती। चिन्ता
आत्मा की करो, परिचय करो, अपार आनन्द का
अनुभव होगा। आत्मा के परिचयी (परिचय करनेवाले)
बनो; काम हो जायेगा। जिन्होंने आत्मा को प्राप्त
किया है ऐसे सन्त की शरण में जाओ, इस

मिट्टी की चिन्ता दूर हो जायेगी |

३९९. ३९९ - सत्पुरुष की शरण पुरुष और कोई इलाज नहीं है | सारा प्रेम इन पर न्योछावर करो, अपनी लगाम भगवान के हाथों में दे दो, फिर विजय हमारे पक्ष में है | जाओ... |

४००. ४०० - स्वरूपजागृति निरन्तर रखनी चाहिए | अन्यथा मोह मदिरा के नशे में फँस जाओगे | और जो नशा है उसे तो उतारना है | अपने दोषों को अंत करने में

४०१. ४०१ - ज्ञानी की शरण स्वीकार करने में पाप नहीं लगता | कषायों को पोषण नहीं मिलता | धर्म की आड़ ले कर जो अपराध करेंगे वे अनन्त संसार को बढ़ायेंगे |

४०२. ४०२ - रत्नत्रय परिणाम आधार के बिना टिकता नहीं और जिनकी आत्मा में रत्नत्रय भरा हुआ है ऐसे शुद्धात्मा सत्पुरुष की आराधना और शरण के बिना रत्नत्रय परिणामधारा प्रगट नहीं होती | क्यों कि वे जानते हैं और उपाय भी उनके पास है | तो आद्य सत्पुरुष को जानना होगा | और जैसे जैसे उनकी अचिन्त्य महिमा का ज्ञान हमें होता जायेगा, त्यों त्यों इनके प्रति शरणभाव - भक्तिभाव बढ़ता जायेगा, और परिग्रह प्रेम हटने लगेगा |

अमृत अर्थात् आत्मा |

४०३. ४०३ - सद्गुरु की आत्मा अमृत ~~समान~~ स्वरूप है और संसारी जीवों की आत्मा में जहर मिला हुआ है | कषाय और विषयरूप वासना का जहर | यदि अमृत प्राप्त करना है तो सद्गुरु पर यह आत्मा न्योछावर कर दो तो उनकी महिमा समझ में आयेगी और फिर अमृत का स्वाद मिलेगा | सत्पुरुष की महिमा अचिन्त्य है | कैसा भी उपसर्ग आ जाय, एक रोम में भी कम्पन नहीं | यह अचिन्त्य महिमा | सत्पुरुष की आत्मा ही महिमा का केन्द्र है | इससे प्रेम होता नहीं, और

इस विषम विषमय संसार में, शरीर में आत्मा लगी रहती है। इस भूल को सुधार कर, वहाँ से प्रेम को हटा कर, उसे सत्पुरुष के प्रति लगा देना चाहिए। संसार में प्रेम का दुरुपयोग होता है। सत्पुरुष के प्रति प्रेम का दुरुपयोग नहीं होता। सत्पुरुष की शरण में रहे तो दोष को आधार नहीं मिलता।

४०४. ४०४ - सत्पुरुष आत्मस्वरूप हैं, शरीरस्वरूप नहीं हैं।

श्री सद्गुरु की आत्मा की चेष्टा के प्रति वृत्ति रहे। सद्गुरु (कृपाळु देव) आत्मस्वरूप हैं। आत्मा की चेष्टा से सद्गुरु की पहचान हो सकती है। आत्मचेष्टा: .... लक्षानुसन्धानपूर्वक आपको और बाह्य पदार्थों को भी देखते हैं। जड को जड और चेतन को चेतनरूप में अलग अलग देखते हैं। वे कलानिधान होते हैं। सत्पुरुष के पास आ कर यह कला सीखनी है। देखने की, समझने की और आचरणों की। और क्या सीखना है? देखना, जानना और आचरण में ज्ञानी में और हममें अन्तर है, और क्या अन्तर है? सत्पुरुष की चेष्टा से शुद्धि होती है, शेष जनों की चेष्टा से अशुद्धि होती है।

४०५. ४०५ - कृपाळदेव की वाणी सुनने के बाद या तो कायरता खत्म हो जाती है या जो कायर है वह पलायन हो जायेगा। दोनों में से एक तो अवश्य होता है।

४०६. ४०६ - जो ज्ञान दुनिया के कचरे में लगा हुआ हो वह ज्ञान कचरे के सिवा और क्या ला सकता है?

ज्ञानियों का ज्ञान आत्मा में रहता है और अन्य लोगों का ज्ञान - ध्यान कचरे में - कूड़े में रहेगा। अमृततत्त्व में जिसका ज्ञान काम करेगा उसे अमृत ही प्राप्त होगा। चमार के पास जब तक रहेगा तब तक जौहरी के पास नहीं रह सकेगा। वह चमड़े को ही देख सकेगा, आत्मा को नहीं देख सकेगा।

४०७ ४०७ - दो प्रकार के देखनेवाले होते हैं। एक द्रष्टा

देखता है और दूसरा द्रव्य को। हर हालत में यह याद रखना चाहिए कि मैं आत्मा हूँ। शरीर नहीं हूँ और इसके लिए सत्पुरुष की महिमा सुनो, समझो और अनुभव करो। चमारों की गिनती में आनेवाला शरीर और वेषभूषा को देखता है। दृष्टि निर्मल नहीं है क्यों कि मत-पंथ के पक्ष में लगे हुए हैं। भाई! सत् मेरा है, मत नहीं।

४०८, ४०८ - भिन्नता का भान पल भर के लिए भी छूटता नहीं है जिनको वे हैं सत्पुरुष।

४०९. ४०९ - निद्राकाल में प्रतीतिधारा, प्रवृत्तिकाल में लक्षधारा और निवृत्तिकाल में अनुभूतिधारा यह है परमार्थ समकित्।

४१०. ४१० - पान खाया हो तो लाली छुपी रह सकती है? अनुभव लाली अवश्य आयेगी। बृहस्पति भी सत्पुरुषों का वर्णन करते करते थक जाते हैं। सम्पूर्ण जीवन बीत जाये तो भी पूरी महिमा गा नहीं सकते।

४११, ४११ - आत्मा तो ज्ञाता, द्रष्टा और साक्षी है। इसके अतिरिक्त वह कुछ कर सकती नहीं है। परन्तु बेहोशी में - मोहावस्था में "मैं करता हूँ" मैं शरीर हूँ, मैंने खाया, मैंने पीया। यह सब मोह ही है। झगड़ा मोह के उदय से होता है। ज्ञानी मिल जायें और उसके मोह का नशा उतारें तो ही मोह दूर हो सकता है।

४१२ ४१२ - सत्पुरुष के दर्शन होंगे, उनके आत्मस्वरूप की महिमा समझ में आयेगी, उसकी शरण में जायेंगे, सन्त के मार्गदर्शन के अनुसार चलेंगे तब ही अनन्तानुबंधी जायेंगे - हटेंगे। अनन्तानुबंधी कर्मों का हटाने का साधन केवल एक सत्पुरुष हैं। अतः उनकी ही अखण्ड शरण में जाओ।

४१३ ४१३ - समर्थ स्वामी अर्थात् मजबूत - दृढ़। किसीसे न डरे ऐसा। उसके आश्रित किसीसे डर सकते हैं? कर्मशत्रु मोहशत्रु से डर सकते हैं? कभी नहीं डर सकते।

२९४ – जब एक मैं ही रहे तो एकाग्रता हो सकती है। सती वृत्ति अर्थात् एकाग्रता। उसकी ही महिमा है। एकाग्रता की महिमा लिखी है जो बुद्धि में नहीं उतरती। एक मैं ही जो वृत्ति रहे वह है एकाग्रता। एक परम कृपालु देव! उनमें ही वृत्ति। तब ही आत्मज्योति प्रगट होगी।

२९५ – पतिवृत्ति अर्थात् एकाग्रता। यह सतियों की एक विशेषता है, ... ब्रह्मचारी जन एवं आचार्य भी उसका गान कर रहे हैं।

२९६ – सन्त तथा सती की महिमा का गान खूब करते हैं। पति का आकार चैतन्य में दिखाई दे वह है एकाग्रता। वही वृत्ति यदि श्री सद्गुरु के प्रति अनन्य प्रेमपूर्वक निछावर की जाय तो उनकी पूर्ण महिमा समझ में आयेगी।

२९७ – इस परम प्रेम के कारण अनन्तानुबंधी दूर होने लगेंगे, नष्ट होने लगेंगे और आत्मा की प्राप्ति हो जायेगी। निज स्वरूप में लीन। जिसका पीछा करेंगे उसका अनुभव होगा।

२९८ – मन्त्र के द्वारा – मन्त्रस्मरण के द्वारा – जो बेहोश था वह होश में आता है। श्रीसद्गुरु ने जो मन्त्र दिया ... अर्थात् ... उससे आत्मा की ही प्राप्ति करवाई। अहो! अहो! श्रीसद्गुरु! महिमाबुद्धि जिनमें हो उन्हीं के प्रति वृत्ति का प्रवाह बहता है।

२९९ – श्रीसद्गुरु सहजात्मस्वरूप हैं तो मैं भी सहजात्मस्वरूप हूँ। उनकी आत्मा जन्ममृत्यु-रहित है तो मैं भी जन्ममृत्युरहित हूँ। उन्होंने उसका अनुभव किया है तो अब मैं भी उनकी शरण में रह कर आत्मा का अनुभव प्राप्त करूँगा। मैंने भले देखा नहीं है परन्तु सद्गुरु भगवान ने तो उसे देखा है, जाना है, उसका अनुभव किया है। तो उनकी शरण में रह कर श्रद्धापूर्वक मैं भी उसको देखूँगा, जानूँगा,

उसका अनुभव प्राप्त करूँगा।

'शास्त्र घणां, मति थोड़ली, शिष्ट कहे ते प्रमाण।'

(शास्त्र तो अनेक हैं, बुद्धि सीमित है, अतः मेरे लिए तो शिष्ट - ज्ञानी जो कहें वही प्रमाणरूप है।)

यह भाव ले कर अगर पकड़ हो सके तो बीज बोया जायेगा। श्वासानुसंधानपूर्वक मन्त्रस्मरण-धारा को अखण्ड करो। परमगुरु के समान ही मैं आत्मा हूँ।

420. ४२० - आत्मा का भान कायम रह कर उसमें जो कषाय होता है वह अधिक से अधिक पन्द्रह भव तक भटकता है और आत्मभाव न हो उस समय जो कषाय होता है वह अनन्त संसार को बढ़ाता है। फिर आत्मभानवालों को कषाय जोर नहीं कर सकते। प्रवृत्ति में लक्षधारा अखण्ड करने का प्रयत्न करें तो हो सकता है। लक्ष अर्थात् आत्मभान (ध्यान-भान)

421. ४२१ - प्रतीतिधारा, लक्षधारा, अनुभूतिधारा :-
आत्मस्मरणधारा से आत्मप्रतीतिधारा होती है, प्रतीतिधारा से लक्षधारा होती है और लक्षधारा से अनुभूतिधारा की प्रतीति होती है। ये तीनों सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र की प्रतीतिरूप में होती है। संज्वलन कषायवाले का तीसरे भव में मोक्ष होता है।

422. ४२२ - मैं आत्मा हूँ यह विस्मरण न हो, यह भाव खण्डित न हो। 'मैं आत्मा हूँ' इतना स्मृति में रखें, इसीकी पकड़ रहे, इतना तो हो सकता है ना? इसमें कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता है। केवल 'स्वयं' को याद करना है, याद रखना है और पर को भूलना है - छोड़ना है। 'यह आत्मभाव और वह जड़भाव' - भेदविज्ञान की यह नोबत बजाते रहो।

423. ४२३ - 'जो प्रतिक्षण नाश की ओर जा रहा है उसे कहते हैं शरीर।' आराधना के जो जो प्रकार हैं उनका आधार है सत्संग, सत्संग और

सत्संग --।

424. ४२४ - आत्मभानरहित जपतपक्रिया आदि बिना दृढ़ नींव के मकान के समान हैं। पात्रता को विकसित करने हेतु प्रत्यक्ष ज्ञानी की आज्ञा का पालन करना चाहिए।

425. ४२५ - लक्ष कहाँ से दृढ़ हो सकता है? प्रेम तो है पुत्र और पत्नी के प्रति, वाडी और बंगले में, असत् की महिमा में ...। फिर लक्ष कैसे स्थिर हो सकता है? कहिए --।

426. ४२६ - शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शयुक्त सब कुछ ज़हर है हलाहल ज़हर है और उसे जाननेवाला अमृत है अमृतस्वरूप है। इस अमृतस्वरूप को ज़हर की आवश्यकता हो सकती है? अपने ज्ञानामृत में यह मूढ़ जीव ज़हर डालता है। वह दूसरों का क्या कल्याण करेगा?

427. ४२७ - विषय-विषह। ये सब विष हैं और इस तथ्य को जाननेवाला अमृत है - अमृत अर्थात् न मरनेवाली आत्मा। अमृतस्वरूप की महिमा का वर्णन सत्संग के द्वारा ही मिलता है।

428. ४२८ - किसी प्रकार की मेहनत के बिना कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता। जिसका मन चिन्तन के द्वारा तत्त्वज्ञान को पकड़ नहीं पाता, एकाग्र नहीं होता उनके लिए मन को एकाग्र करने के लिए भक्तिमार्ग में 'धून' एक प्रयोग है। मेहनत के बिना कुछ भी नहीं मिलता।

429. ४२९ - जब तक चार बन्धनों में बन्धा हुआ है, साध्य की सिद्धि में बाधा होती है।

जगत में सदा सुखी मुनिराज,

शान्ति अर्थात् निर्विकल्पता याने मन की हलचल का मिट जाना। अशान्ति अर्थात् शुभाशुभ कल्पना का उठना। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र ही आत्मा है।

430. ४३० - निस्तरंग अवस्था में ही निर्मलता होती है। चैतन्य जब जब निर्विकल्प

होता है तब तब अपने आपका दर्शन होता है और सुख की उर्मी लहराती है। समस्त ऐश्वर्य का प्रादुर्भाव ही आनन्द है। आनन्द अंशी है और सुख अंश है। बाधा पहुँचाने-वाला ही बाधित होता है। 'मिट्टी घड़ा बनती है वैसे आत्मा परमात्मा बनता है। 'मेरे घट ज्ञानभानु भयो भोर।'

431. ४३१ — भावनिद्रा से सद्गुरु जगाते हैं और घट में रोशनी प्रगट हो जाती है। अगर घट में अन्धकार रहा तो सो जायेगा। परविभाव परिणति का त्यागी होना यह वीतराग की तालीम - शिक्षा है। पुण्य की पुड़िया ले कर जो उछलता, ऊँचे जाता है वह अवश्य नीचे आता है। मन वश में नहीं है तब तक धर्म नहीं हो सकता।

432. ४३२ - नफा करना है तो खर्च करना पड़ेगा। जगत को खुश करने की बहुत मेहनत की लेकिन ना जगत खुश हुआ, ना हम! अब ज्ञानी खुश हों ऐसा करो। तो हम भी खुश होंगे। अन्तरंग मार्ग एक है, बहिरंग मार्ग पन्द्रह भेद से सिद्ध का है।

433. ४३३ - ज्ञानी वाणी द्वारा अनुभव का दिग्दर्शन करते हैं। जड वस्तुओं का सम्बन्ध जड वस्तुओं से है। चेतन से नहीं। हम हमारे चेतन भावों के मालिक हैं। जो विस्मरण न हो वह है स्मरण।

434. ४३४ - निमित्त साधन :- जब तक निमित्ताधीन वृत्ति है तब तक अच्छे निमित्तों को रखना और बुरे निमित्तों को छोड़ देना चाहिए। अनुभूति के लिए शांत रस का परिणमन होना ... जरूरी है। 'ॐ शुद्धात्मा' सिर्फ उसमें चित्त लगाओ, तो निर्विकल्प हो जायेंगे — भूलने में, उतारने में और प्रयोग में गुरुगम से — —।

435. ४३५ - नियम - काल की फाँसी जिसके द्वारा निकल जाय उसका नाम नियम। फिर काल अपना काम तो करेगा, परन्तु बाधा नहीं आयेगी - नहीं पहुँचेगी।

436. ४३६ - आराधना में निष्ठा यह सफलता की कुंजी है। अनुकूलता के दास बननेवालों से अथवा शाता के भिखारियों से नक्शे बनाये जा सकते हैं, भवन नहीं बनाये जा सकते, याने चलने की क्रिया नहीं हो सकती। एक लाभ है कि एक को पकड़ा है इसलिए दूसरे किसी गड्ढे में नहीं गिरेगा। बाकी आत्मभान, प्रकाश अर्थात् स्वानुभव नहीं होगा॥

'काम एक आत्मार्थनुं, बीजो नहीं मनरोग।'

437. ४३७ - निश्चय करें कि करना ही है, छूटना ही है और तदनुसार ही साधना करें। परम कृपालु की शरण के कर और उनके स्मरण के साथ करना ही है।

'जिससे स्वरूपजागृति रहे उसको ही मन्त्र कहते हैं।'

438. ४३८ - 'केवळ निज स्वभावनुं अखण्ड वर्ते ज्ञान।'
इस व्याख्या के स्मरण से आत्मा सन्मुख होती है। जानने के स्वभाव में देखने के स्वभाव का समावेश है।'

439. ४३९ समकित की प्राप्ति हुई ऐसा कब माना जा सकता है? आत्मा को केवलज्ञान क्या है उसका वेदन हो।

'चारित्र अर्थात् देहमानरहित .... आत्मरमणता।'

440. ४४० - जो कर्म सिद्धान्त के द्वारा समझ में न आये वह अच्छेरा अर्थात् आश्चर्य कहलाता है।
'आश्चर्य की प्रतिमारूप हम' यह अच्छेरा अर्थात् आश्चर्य है। जिसकी दृष्टि आत्मआश्चर्य की ओर जायेगी वही कृपालु के रहस्य को समझ सकेगा।

441. ४४१ - कर्म के उदयकाल में जीव को साक्षीभाव से रहना चाहिए।'
परिस्थिति जिनसे उत्पन्न हुई है वे परिस्थिति से बलवान हैं। अपने आपको परिस्थिति में क्यों डूबोयें? सुख और दुःख परिस्थिति है, उसमें साक्षीरूप रहना चाहिए। अपने आपको कर्ता या भोक्ता नहीं मानना चाहिए। कर्मफल का त्याग करते

हुए रहना चाहिए - जैसे मोटर का टायर burst हुआ, मेरा नहीं।

४४२. ४४२ - कर्मफल के उदय में निरन्तर जाग्रत रहो। मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ ऐसा मत मानो। सुख और दुःख का सम्बन्ध शरीर से है, आत्मा से नहीं। जो शाश्वत पदार्थ है वह दूसरों के आधार पर निर्भर नहीं है। वह स्वतन्त्र है। आठों कर्मों का कर्ता वास्तव में जीव नहीं है। कल्पना के निमित्त से ऐसा लगता है। अज्ञान दशा के कारण भेद का ज्ञान नहीं है।

'भोगनेवाला मैं नहीं हूँ, देखनेवाला मैं हूँ।'

शत्रु और मित्र - यह सब कल्पना है। कोई किसीका शत्रु नहीं है और कोई किसीका मित्र भी नहीं है, आप ही आपके शत्रु और आप ही आपके मित्र हैं। कर्मफल के त्याग की भावना को दृढ़ करने हेतु यह फलपूजा है। अभ्यास - यह तो विस्मृत हो सकता है, अध्यास - जो कभी विस्मृत न हो।

• आत्मा की सिद्धि होने पर साधन टिकता नहीं है।

• वीतराग की बात एकान्त हितरूप है।

• परमहंस अर्थात् सातवें गुणस्थानवाले।

४४३. ४४३ - संवत् १९४७ - कृपाळुदेव पराभक्ति में लीन हैं।

संवत् १९४८ - क्षायिक धारा बरसी है।

कृपाळु को मनमन्दिर में स्थापित करें और फिर देखिए कि कैसे सम्हालता है मेरा नाथ! सत्संग के द्वारा समझ कर बाद में भक्त बनें।

४४४ ४४४ - भगवान के साथ भक्तों की जो चेष्टा है उस भावावेश को कौन समझ सकता है! परमात्मदशा का भावावेश आता है।

'भक्ति का मार्ग सरलतम मार्ग है।'

४४५ ४४५ - 'साकार रूप में भगवान का स्थापन यही सत्य-सुधा है।'

४४६. ४४६ - हाथनोंध में से विवादास्पद वचनामृतों का अभ्यास (करना योग्य है।) कर के मुमुक्षु को तैयारी करनी है। अन्यथा बाद में

कोई उत्तर नहीं दे सकेगा।

447. ४४७ - करने का है वह करते ही रहते हैं, परन्तु (किरम) अब तक आत्मशान्ति प्राप्त नहीं हुई है। अर्थात् उस दिशा में कुछ भूल हो रही है। करने जैसा क्या है? यही विशेषतः छूट जाता है। तू पराधीनरूप से व्यवहार कर रहा है - जी रहा है, उसके बदले अवश्य स्वाधीनरूप में व्यवहार करने जैसा है।

448. ४४८ - अव्याबाध सुख अर्थात् जो दूसरों को पीड़ा न दे और दूसरों से पीड़ा पाये नहीं ऐसा जो सुख वह अव्याबाध सुख है।
'स्वयं के द्वारा 'स्व' में से ही जो उत्पन्न किया गया - प्रादुर्भूत किया गया हो वह स्वरूप है।

449. ४४९. "भाई! इतना तो तेरे लिए अवश्य करने योग्य है।" - कृपालु।
जीव का शाता - अशाता के साथ भावात्मक सम्बंध है। बाकी वह भोग सकता नहीं है।
विचार = वि - चार। विनय, विवेक, विरक्ति, विज्ञानघन।
∴ विविन्न पद = सद्गुरुपद। उस पद के पास जानेवाले और उनकी आज्ञा में रहनेवाले ही परमात्मपद पर आरूढ़ होते हैं।

450. ४५० - 'व्यक्तिपूजा से रागद्वेष होते हैं। पदपूजा से रागद्वेष दूर होते हैं।' सद्गुरु के आश्रय अपना ही पद प्राप्त होता है।
अरिहंतपद अर्थात् सद्गुरुपद - देवपद।
सिद्धपद अर्थात् केवल शुद्धात्म पद।
आचार्यपद, उपाध्यायपद, साधुपद ये तीनों सद्गुरुपद हैं।

451. ४५१ - हमारे आचरण ऐसे हैं कि जिसमें से प्राप्त होता है दुःख। और सद्गुरु ऐसे आचरण में हैं कि वे परम सुखी हैं। हमें वही आचरण सीखना है। वह (सुख) उनके चरणों के समीप के निवास से - आज्ञाधीन हो कर कार्य करने से -

(उनकी आज्ञानुसार प्रत्येक व्यवहार करने से) प्राप्त होता है। अन्तर की खोज नहीं है। आँखें नहीं हैं।
विशिष्ट पद पर जो ले जाय वह विनय।'
विवेक अर्थात् अच्छे-बुरे का ज्ञान, स्व-पर भेद को जो जान पाये। मिश्रण को विवेक से अलग किया जा सकता है। जब प्रकाश होता है तब जो है वह दिखाई देता है।
ज्ञानप्रकाश से अन्धकार दूर होता है।
'सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है।'
विरक्ति अर्थात् रागरहित दशा अर्थात् वैराग्य।
विज्ञानघन अर्थात् केवलज्ञानस्वरूप
विचार अर्थात् चिन्तन।

452. ४पू२ - दूर बैठे रहने पर भी खनन क्रिया होती है उसे दुःख कहते हैं। "वह सुखी है या दुःखी"... कारणों से भिन्न लगता परन्तु है, वह दुःखी। सुखस्वरूप स्थिति ही तो सुखी होने की इच्छा उत्पन्न हो सकती है क्या? लेकिन दुःखी है इसीलिए सुखी होने की इच्छा होती है। - - -

'सुखाभास और दुःखाभास दोनों दम्भमय जीवन है।'

453. ४पू३ - 'सर्वसंग परित्याग किसलिए?' 'संग के योग से यह जीव स्वयं को भूल गया है इसलिए।'

454. ४पू४ - सद्गुरु के चरण में रहने के लिए चरण में जाने पर जो भाव उठा वह भाव सदासर्वदा के लिए अखण्ड रहना चाहिए। ऐसे ही गुरु की शरण में जायें जहाँ देहभान छूट जाय और आत्मभाव अक्षुण्णरूप से बना रहे। उनकी आज्ञानुसार आचरण करें तो सुख की प्राप्ति होगी।
'देशत्यागी हो कर भी उस वस्तु का विस्मरण मत करना।' कौन सी वस्तु का?
सर्वसंग परित्याग का।'

455. ४पू५ - कर्मसिद्धान्त को उत्सर्ग और अपवाद - ऐसे दो प्रकार से प्रस्तुत किया है। जो बुद्धिगम्य बन ही न सके वह "अच्छेरा" - आश्चर्यरूप है।

"परम कृपालु देव की जो घटना हुई उसे हम कर्मसिद्धान्त के सिद्धान्त अनुसार नापने की चेष्टा करें तो वह किस प्रकार सम्भव होगा? यह तो एक अच्छेरा - आश्चर्यरूप है।"

इस प्रकार के दृष्टान्त भी कर्मसिद्धान्त में वर्णित हैं। इस प्रकार से उनको समझने का प्रयास कर के लाभ प्राप्त किया जाय यही हितकर है क्योंकि उससे आत्मलाभ तो अवश्य प्राप्त होता है। बाह्य उदय के द्वारा अन्तराय कब उपस्थित होते हैं?

वृत्ति जब निमित्ताधीन हो तब। जो आत्मभानपूर्वक व्यवहार करता है उसे कोई उदय बाधारूप नहीं बन सकता।

✓456. ४५६. - घर में रह कर साधना करना बहुत कठिन है। कर सकते हैं, लेकिन अत्यन्त कठिन है।

457. ४५७. 'सब से महान में महान कार्य की सरलता से सिद्धि करनी है तो सब से पहले श्रीसद्गुरु की चरणशरण में जाओ और आज्ञाधीन रहो। महान से महान कार्य की अवश्य सिद्धि हो जायेगी।'

सम्पूर्ण सुख और दुःख का अभाव होता है - वह सिद्धि है।

458 ४५८ - दुःख मिटाने की प्रवृत्ति है, लेकिन दुःख के कारण मिटाने की प्रवृत्ति नहीं है। कारणों का ख्याल तक नहीं है। दुःख का मूल कारण है देहात्मबुद्धि। चंचलता, प्रमाद, कषाय। अगर किसीने चंचलता को मिटा दिया तो प्रमाद होता है और संज्वलन कषाय आते हैं। और योग भी।

'जिनको समाधि स्थिति रहती है वे हैं सर्वसंगपरित्यागी।'

459. ४५९ - गुप्तिरूप परिणति धोरी मार्ग है (राजमार्ग) और समितिरूप परिणति तो अपवाद मार्ग है।

'स्थिरं सुखं आसनम्' | 'उत्सर्ग मार्ग यानि धोरी मार्ग-
राजमार्ग - है |

460. ४६० - वर्तमान क्षण को सुधारने से आयु सुधरती है
अर्थात् जीवन सुधरता है | जीवन को जैसा
बनाना चाहते हैं ऐसा आचरण वर्तमान में करें
तो बन सकता है |

461. ४६१ - कर्मरूपी व्यापार का फल भोगने के लिए
यह शरीर मिलता है और धर्मरूपी व्यापार से
जन्म-मृत्यु का अन्त आता है | कर्मव्यापार अगर
अच्छा हो तो भी यह शरीररूपी कैद तो मिलेगी |

462. ४६२ - सुख आत्मसापेक्ष है, धनसापेक्ष नहीं है,
कुटुम्बसापेक्ष नहीं है, शरीरसापेक्ष भी नहीं है
केवल आत्मसापेक्ष है | पेट्रोल-पानी का सम्बंध
ड्राइवर साब से नहीं, मोटर के साथ है |

463. ४६३ - कर्मव्यापार से कभी किसीको स्थायी सुख
मिला है? ऐसा न कभी हुआ है और न होगा |
धर्मव्यापार से ही सम्पूर्ण अव्याबाध सुख
मिलता है | शरीर मुर्दा है | अपराध इसलिए
होता है कि मनुष्य मृत्यु को भूला हुआ है |

464. ४६४ - साक्षी बनकर, ज्ञाता-द्रष्टा बन कर रहना
चाहिए | साक्षी को सज़ा नहीं मिलती, सज़ा
मिलती है गुनहगार को | रागद्वेष को मिश्रित करने
के फलस्वरूप लोग अपराधी बनते हैं |

465. ४६५ - तू त्रिलोकीनाथ है फिर भी भिखारी जैसी
दशा क्यों आई है? अतः तू स्वयं की दशा
का निरीक्षण कर, स्वयं का निरीक्षण कर -
'वह सुखी है या दुःखी इसका परीक्षण कर |'
सम्पूर्ण जगत आशा के बन्धन में बंधा हुआ है |
सुख का भान नहीं है | शातावेदनी को सुख
मान बैठे हैं | शाता-अशाता ये दोनों दुःख ही हैं |
क्यों कि ये दोनों आत्मा को दुःख देते हैं |
वास्तविक सुख - शाश्वत सुख, वास्तविक आनन्द
आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ

मैं नहीं है, नहीं है, नहीं ही है। पंचविषय के साधनों को यह जीव आवश्यक समझता है। परन्तु बेहोशी में होने के कारण अपने सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है।

466. ४६ – सभी जीवों की जो सुख की इच्छा निरन्तर बनी रहती है उसका कारण यह है कि वह स्वयं सुखस्वरूप है, इसीलिए उसे सुख की इच्छा रहती है। सुख परिचित वस्तु है। जीव स्वयं सुखस्वरूप है। केवल परावलम्बन के कारण जीव इस सत्य को भूल गया है और बाहर, अन्यत्र उसे प्राप्त करने हेतु व्यर्थ प्रयत्न करता है। 'इच्छा की निवृत्ति होने पर जो भाव जाग्रत होता है वह सन्तोष का भाव है' और जीव उसका अनुभव करता है। पाँच इन्द्रियों के विषय में इस प्रकार सुख की झलक का अनुभव होता है परन्तु वह टिकता नहीं है। सुख इच्छा की पूर्ति के द्वारा नहीं, परंतु इच्छा की निवृत्ति के द्वारा प्राप्त होता है और वह अपने आपमें से ही प्राप्त हो सकता है। सुखी होने की भावना के लिए जीव जो परिश्रम करता है वह गलत है। पाँच इन्द्रियों के विषय में इस प्रकार सुख की प्राप्ति के लिए मेहनत करता है, इसलिए वह गलत है, मिथ्या है। यह जीव स्वभावगत सुखस्वरूप है, इसलिए वह सुख को खोज रहा है (खुद अपने आपको ही भूल गया इससे बड़ी बेहोशी कौन सी हो सकती है!) देह और आत्मा का तादात्म्य सम्बंध तो है नहीं, आधार-आधेय सम्बंध है।

467. ४६ – यह मूढ़ जीव माया की कृपा को भगवान की कृपा कहता है। देहभाव रखकर कभी धर्माराधना नहीं हो सकती। देहभाव छोड़ कर ही धर्माराधना हो सकती है। अतः

सर्वप्रथम 'तू स्वयं को जान।' क्षण क्षण अन्तर्दाह जलता ही रहता है।
जगत में सदा सुखी मुनिराज।'

४६८ - भगवान् महावीर ने तथा परम कृपालु देव ने कहा है - जो असार है उसमें से कोटि उपाय करने पर भी सार निकलनेवाला नहीं है। आगार धर्म घर में रह कर भी हो सकता है, परन्तु भावना तो यही होनी चाहिए कि, 'बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ कब होंगे?'
'क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो।'
अत्यागी देशत्यागी दशा में भी इस अपूर्व वस्तु का विस्मरण नहीं होने देंगे। इसी भावना को लेकर ही तो 'अपूर्व अवसर' काव्य की रचना हुई है।

४६९ - जीव देहाभिमान के कारण केवल मोहांध दशा में रहता है। देह की ही चिन्ता में 'स्व' का - आत्मा का - आत्मा के लिए कुछ करने की फुरसत उसे मिलनेवाली ही नहीं है। सचमुच इस देह की चिन्ता के कारण ही आत्मसाधना हो नहीं सकती है।
'देहाभिमान बन्धन सबसे बडा बन्धन है।'

४७० - 'न हो सके तो प्रतिश्रोती बन।' प्रतिश्रोत का अर्थ है जहाँ से प्रवाह आता है। अर्थात् सुननेवाले की (आत्मा की) आवाज़ को सुन कर तेरा आज का व्यवहार कर। अन्तरलक्ष में याने आत्मा की आवाज़ को सुनकर तदनुसार कार्य कर। उत्तर अवश्य प्राप्त होगा। धैर्य रखना पड़ेगा। मूल की ओर दृष्टि कर। दृष्टि को आत्मा पर केन्द्रित कर और उसकी आवाज़ को सुनकर तू अपना कार्य कर।

४७१ - जिसका परिचय है ऐसे इस पुद्गल को यह जीव 'मैं' के रूप में मान रहा है। ये मान्यताएँ पूर्णतः विपरीत है। तू तो आत्मस्वरूप

है।' – कैसा ? 'सहजात्मस्वरूप'। जड़ सत्तास्वरूप नहीं है। यह कौन समझा सकता है ? जिन्होंने अपने स्वरूप को जाना है वे परम कृपालु देव। परम कृपालु देव परम गुरु कहते हैं 'हम जैसा कहते हैं वैसा कर। अपनी मान्यता को छोड़ दे और मुझमें विश्वास रख कर मन में यह भाव दृढ़ कर कि तू परमगुरु के जैसा ही सहजात्मस्वरूप है। विश्वास पर तो विश्वतन्त्र चलता है। नाई, ड्राईवर, प्लेन, पति-पत्नी – एक भी कार्य विश्वास के बिना होता नहीं है। फिर भी विश्वास रख कर आप सुखी नहीं हुए हैं। इसलिए भाई! मुझ पर विश्वास रख कर, मैं जैसा कहूँ वैसा छः मास तक कर। परम कृपालु कहते हैं – 'मैं सहजात्मस्वरूप हूँ। तू भी सहजात्मस्वरूप है। हम समकक्ष हैं, समसत्तास्वरूप हैं। जड़धन जड़ में ही खर्च करना चाहिए। चेतन प्रदेश में इसका उपयोग करना ही नहीं चाहिए और करें तो वह विषरूप हो जायेगा। तेरे रत्नभण्डार के रत्नों को तू खर्च करे तो तू सुखी हो सकता है।' इस वर्तमान समय में जो अनुभव प्रवर्तित है वह है जड़ महिमा का। इसमें सुख है ही नहीं। तू सहजात्मस्वरूप है इस बात को मान कर चल।

४७२. ४७२ – "बैठे बैठे मुफ्त में जगत की लीला को देखते हैं।" सारी दुनिया धूल में खेल रही है। बाह्य प्रवृत्ति में थक जाते हैं। शान्ति प्राप्त होती नहीं है। आत्मप्रदेश में हलचल होती है, 'परम कृपालु के समान मैं सहजात्मस्वरूप आत्मा हूँ।' इस भावना को पुनः पुनः दृढ़ करते रहो। निर्विकल्प विश्वास के साथ छः मास के लिए इस शिक्षा को ग्रहण कर और उसकी तालीम ले।

४७३. ४७३ – 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' इस धारणा को पकड़ो और उसे मन में दृढ़ करो। मैं सहजात्मस्वरूप हूँ, शरीरस्वरूप नहीं हूँ। इस प्रकार की धारणा से 'मैं' और 'मेरा' की भावना से परमगुरु छुड़ाते हैं।

474. ४७४ - अपनी आत्मा को जो देख सकते हैं वे परमगुरु को भी देख सकते हैं और सिद्ध भगवान को भी देख सकते हैं।

475. ४७५ - सर्व दुःखों से और क्लेश से मुक्त होने का एक मात्र उपाय है आत्मज्ञान 'अर्हत् धर्म - पूज्यों के द्वारा बनाया गया धर्म - निर्ग्रंथ धर्म। जैन धर्म तो इन दोनों के बाद शुरु हुआ है। बुद्ध के समय में निर्ग्रंथ धर्म 'आर्हत' धर्म के नाम से प्रचलित था।

476. ४७६ - श्रमण अर्थात् उद्यमशील महेनती - स्वरूप जागृति के लिए। परमकृपालु मृत व्यक्ति को जिन्दा बना सकते हैं याने जो शरीरस्वरूप था उसे यहाँ से परिवर्तित कर के अविनाशी आत्मस्वरूप बना देते हैं।

477. ४७७ - निद्राकाल में प्रतीति, प्रवृत्तिकाल में लक्ष निवृत्तिकाल में अनुभूति - यह साधुपद है। पाँचों में पूज्य कौन? 'आत्मा'।

478. ४७८ - पर-पद विपदा है। स्व-पद संपदा है। जीव मान्यताओं में परिवर्तन करने के लिए स्वतंत्र है, मान्यता बदल दो! क्या? मैं परमगुरु के समान सहजात्मस्वरूप हूँ इसलिए परमगुरु की शरण में

479. ४७९ - 'पाँचों परमगुरु शरीरस्वरूप नहीं हैं, आत्मस्वरूप हैं। उसी प्रकार मैं भी सहजात्मस्वरूप हूँ। परमगुरु के जैसा। परम कृपालु की मुद्रा में ध्यान स्थिर कर के, उसीका अवलम्बन ले कर रटन करें - 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु...'। ...

480. ४८० - प्रतिज्ञा कर के परम कृपालु पर लक्ष स्थिर कर के 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' मंत्र का अखण्ड रटण करो, मत भूलो। मैं शरीरस्वरूप हूँ, इस विचार को छोड़ दो। छूट जायेगा। चिंता मत करो। कमर कस के लग जाओ।

481. ४८१ - गिर, गिर कर धायक जैसी स्थिति में शरण में जाना। वह अपने लिए कुछ नहीं कर ... धायक अवस्था का अनुभव ... जिसको

होता है उसका उपचार श्री सद्गुरु कर सकते हैं। भावदृष्टि से 'विरहा' शब्द का प्रयोग किया गया है। घायल अवस्था में अगर जीवन व्यतीत हो तो वह शिष्य बनने योग्य है।' शिष्य का अर्थ है 'ग्रहण करने के लिये योग्य पात्र'। विरह दशा अर्थात् घायल दशा। सभी साधनों का राजा है विरह। जिसके हृदय में विरहाग्नि प्रगट हुआ नहीं है वह घट स्मशान रूप है। कर्मों को जलाने के लिए विरहानल रूपी ध्यान की आवश्यकता है। गौताखोर अगर अंतरतम में गोता लगाये अंतःकरण में डूब जाय तो दिख पड़ता है। किनारे पर खड़े रहेंगे तो क्या दिखेगा?

482. ४८२ - अत्यागी तथा देशत्यागी के लिए - जिज्ञासा केवल उस वस्तु के लिए - तत्त्वज्ञान के लिए रखें, परोक्ष रूप में भी आत्मा का भान जिनको नहीं है वे कैसे कर सकते हैं? और करें तो भी क्या लाभ हो सकता है? केवल स्वरूपानुसंधान का लक्ष रखकर व्यवसाय करें।

483. ४८३ - मार्गानुसारिता अर्थात् - मार्ग में प्रवेश करने हेतु जिसकी तन्मयता है, लगन है वह उस मार्ग के प्रति दृष्टि रख कर चलता रहे। देह की चिंता जब कम होगी और आत्मा की चिंता उससे अनेकगुना बढ़ेगी तब मार्गानुसारिता प्राप्त होती।

484 ४८४ - 'अनुत्तरवासी देव के लिए एक ही भव शेष होता है। मनुष्य का जन्म प्राप्त कर के अनुत्तरवासी बन कर व्यवहार कर। एकावतारी की धारणा तो मन में निश्चित् कर। इसी भव में मोक्ष प्राप्त होनेवाला ऐसे भाव रख। और ऐसा - उस प्रकार व्यवहार कर। चेष्टा उसी के अनुसार कर। तेरा व्यवहार अनुत्तरवासी जैसा होना चाहिए इसलिए तू उस प्रकार का व्यवहार कर। यही करने योग्य है... कर।

485. ४८५ - 'अन्त समय पर चूकना मत' - यह और वणभव है नहीं - लेनदेन - ऋणानुबंध पूर्ण करें। त्वरा से ले जाइये। यही भय है। अब और जन्म धारण करने नहीं हैं। तैंतीस पक्ष में एक श्वास खर्च होता है। तैंतीस सागरोपम आयुष्यवाले को अनुत्तरवासी बन कर व्यवहार करने की - बरतने की आत्मदृष्टि प्राप्त हो जाती है।

486. ४८६ - 'वो ज्ञानी का देश' अर्थात् चैतन्यप्रदेश। भावदृष्टि से सिद्धालय है चैतन्यप्रदेश। प्रदेश - आत्मा का परमाणु जैसा जो हिस्सा है उसे प्रदेश कहते हैं। अपनी आत्मा अपने आत्मप्रदेश में रहती है। सुख की खोज में अनन्त जन्म गंवाये फिर भी पता न चला। सुख आत्मप्रदेश में है वह समझना है और अनुभव करना है। तब तक उनको सम्हालना आवश्यक है। लेकिन यह 'मैं हूँ' उस बुद्धि से नहीं। मैं आत्मा हूँ और यह शरीर गाड़ी है - अलग है। इसी प्रकार से, इसी सोच के साथ, देना। इच्छापूर्वक, जो भी प्रवृत्ति करनी पड़ती है वह कितनी कम मात्रा में अपराध हो उस प्रकार से करनी होगी। उसी प्रकार से हम अपराध-परम्परा से छूटें। इस प्रकार विवेकसम्पन्न हो कर घर में रहें तो भी आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

487. ४८७ - जिसको सत् का साक्षात्कार हुआ है उसके संग में रहना यह है निमित्तरूप सत्संग। 'ज्योत से ज्योत जलाना।'

488 ४८८ - जो स्वयं में ही रहते हैं ऐसे व्यक्तियों का सत्संग वह सत्संग है, और ऐसे सत्संग में रहना चाहिए।

489 ४८९ - ज्ञानी सरल - सादी भाषा में प्रवचन करते हैं, क्यों कि उनकी भावना यह होती है कि साधारण मनुष्य भी इसे समझ

पायें। वे पण्डितों की भाषा में उपदेश नहीं करते। ज्ञानियों की भाषा सादी सरल होती है।

490. ४९० - इतने दुकानदार हैं वे सब अपने माल को अच्छा कहते हैं; लेकिन ग्राहक समझ कर जो माल अच्छा होता है वही खरीदते हैं। उसी प्रकार सब यही बात करते हैं कि हमारे पास धर्म है, लेकिन हम जो खरीदना चाहते हैं उसे विवेकपूर्वक, दिल और दिमाग का उपयोग करके, जो असली प्रतीत हो वही खरीदें। सच्चाई के साथ हम परख करेंगे तो असली को पकड़ पायेंगे।

491. ४९१ - असली चीज़ है अनंतज्ञान आदि और यह आत्मा का स्वरूप है। इसकी प्राप्ति हो जाने से सोया हुआ मूढ़ जीव भी जाग्रत हो जाता है।

492. ४९२ - तीर्थंकर शैली में बताया है कि 'आत्मा का धर्म आत्मा में है।'

493. ४९३ - जिनकी अनुभवसिद्ध सजीवन वाणी है ये हैं सजीवनमूर्ति। आत्मा को जो आत्मा के रूप में ही स्वीकार करते हैं वे हैं सजीवन मूर्ति। 'सत्पुरुष ही प्रत्यक्ष मोक्ष हैं।' साधना में गुरुगम से कोई भी मन्त्र मिले उसका नाम है आत्मा, क्यों कि यह मन्त्र आत्मप्रयोजनरूप है।

494. ४९४ - ज्यों ज्यों सात्त्विक भावका उद्योत होता है, निंद नहीं आती है क्यों कि यह आत्मा गुण है। भक्ति आदि में एकाग्रता से निंद नहीं आती।

495 ४९५ - जो अपने आपके व्यक्तित्व को मिटा दे, उसे प्रभु में मिला दे, वही भक्त हो सकता है। उपादान और निमित्त दोनों के सहकार से कार्य सिद्ध हो सकता है।

४९६ - स्थिरता स्थिति होने में जो मददरूप है
वह है निमित्तरूप सुधारस और तद्रूप हो जाना,
भगवान के स्वरूप को और अपने स्वरूप को
एकरूप अनुभव करना यह है उपादान सुधारस।

४९७ - केवलज्ञान नहीं है तो आत्मा भी
नहीं है। घूंघट खोल कर प्रभु के दर्शन किये
हैं? दुःख मिटाने के लिए जो उपाय करते हैं
वह उपाय गलत है। श्री सद्गुरुशरण ही
ताला मिलावर का ज्ञान है। उपयोग करें तो
कार्यसिद्धि हो सकती है। उसका फल है
सुधारस और उसका फल है अव्याबाध समाधि।

४९८ - अहंभावथी रहित नहीं
स्वधर्म संचय नाहीं।
अहंभाव अर्थात् देह में आत्मबुद्धि। अन्यधर्म
का अर्थ है जडधर्म परधर्म। रागद्वेष सहित
जो है वह अन्यधर्म है। ज्ञानदर्शनचारित्र की
ऊर्मि जहाँ जहाँ लहराती है वह स्वधर्म है।

४९९ - दूर होते हुए भी आत्मा को कुरेदते हैं
यह है दुःखे। परधर्म सब दुःखरूप है।
बाह्य पदार्थ जो हैं यह सब दृष्टि विष है।
और इस विषप्रयोग के कारण मैं आत्मा हूँ यह
घर आना नहीं है। परधर्म है - भयावह है।
हिंसा को अपनाते हैं वह अधर्म है।

५०० - तीर्थरक्षा के लिए यदि किसीको मार
दिया जाय तो भी यह धर्म है ऐसा
कहनेवाला यदि जैन हो तो भी यह अधर्म है।

५०१ - भावतीर्थ है आत्मा। भावधर्म है आत्मा,
भावगुरु है आत्मा, भावदेव है आत्मा। जानने
की क्रिया ज्ञानरूप में और अज्ञानरूप में
भी यह आत्मा ही करती है। सुखदुःख ये
भी आरोपित भाव हैं।

५०२ - आत्मा को जगानेवाली शैली है तीर्थंकर
की, रागद्वेष को भगा देती है यह शैली।
भगवान की कृपा है यहाँ ज्ञानरोशनी है। बाकी

माया की कृपा है।

पू० ३ - सब दोषों को जाननेवाला मैं आत्मा हूँ। दोष शरीर से होता है, आत्मा से नहीं। लेकिन भ्रमवश अपना समझ के मारा मारा फिरता है। मेरे विज्ञान की नौबत जिनके हृदय में बजती रहती है वे हैं जैन, जिनेश्वर के छोटे नन्दन हैं परम कृपालु।

पू० ४ - मार्गानुसारिता में सब से प्रथम है न्यायसंपन्न वैभव द्रव्य। मार्गानुसारिता में प्रवेश नहीं है वह मोक्षमार्ग में कैसे प्रवेश कर सकता है? कभी नहीं होगा। निमित्त रूप में जो कुछ करना था, कर लिया। लेकिन उपादान के ~~सब~~ मैं लिए भी कुछ करने योग्य है या नहीं?

पू० ५ - जानकारी का फल है अव्याबाध सुख। यदि शुभाशुभ कल्पना की जाल बनी रही है तब तक जो जानकारी है वह अज्ञान है। अपनी जानकारी यदि सही है तो उसका फल मिलना चाहिए। और यदि न मिला तो यह जानकारी सही नहीं है।

पू० ६ - एक अक्षर को भी उथापे तो अनन्त संसार को बढ़ाता है, और अब तो चौदह भेद को उथापते हैं, तो क्या होगा? पन्द्रह भेदा सिद्ध तो क्या सिर्फ ओघामुहपत्ति ही एक रह गया है? उसे ही मानते हैं और शेष सब छोड़ देते हैं! क्या होगा इन लोगों का? गच्छ के लिए करते हैं, आत्मा के लिए कुछ नहीं करते। परमार्थ को तीन गच्छ हैं: बहिरात्म गच्छ, अन्तरात्म गच्छ और परमात्म गच्छ। आत्मा का उद्धार करो तो गच्छ का उद्धार होगा। नाम लेते हैं गच्छ के उद्धार का और आत्मा को धकेल देते हैं रागद्वेष में - चौराशी (चौरासी) के चक्कर में।

पू० ७ जो स्वअर्थ को सिद्ध करता है वही परार्थी बन सकता है। जो स्वयं बीमार है

वह दूसरों की क्या सेवा कर सकता है? मन के बीमार है। किसी भी संप्रदाय वाले हों, सब सुखी होना चाहते हैं और सुख राग-द्वेष-अज्ञान के अभाव में है। बंध के प्रकार अनेक हैं वैसे छूटने के प्रकार भी अनेक हैं। जिससे छूटना है उसका भान नहीं है। कुछ भी करें, किसी भी पद्धति से करें, लेकिन अपनी आत्मा को भूल कर न करें। इसकी प्रतीति हो गई, विश्वास हो गया, वह इस चमड़े पर कैसे नज़र करेगा? चमड़े पर नज़र करते हैं चमार। आत्मा आत्मा में और शरीर शरीररूप में दिखाई देना यह है समकित। किसी भी पद्धति से और किसी भी धर्म की आज्ञा में रहे, करें, लेकिन आत्मा को दृष्टि में रख कर करें। 'नट की तरह जाओ बाज़ार में और सेवा करो नर्स की तरह और सतत भान रखो कि मैं आत्मा हूँ, आत्मा हूँ। रत्नत्रय परिणाम का संचय करो और रागद्वेष को निकालो। चाहे किसी भी धर्म में हों, यह करो।

508. पू०८ - यावत् कंपन तावत् बंधन। विषयकषाय को चालू रखने का काम यह जीव बंद रखता नहीं है, कल्पना करके करके आत्मा का हनन करता है, खण्डन करता है, वह दुःख है। दूरात् खनति इति दुःख। दूर होते हुए भी आत्मा को खोदता है। खोद डालता है।

509. पू०९ - सत् का साक्षात्कार - जिसको जड जड के रूप में और चेतन चेतनरूप में परिलक्षित होती है उसे सत् का साक्षात्कार प्रवर्तित है। ऐसे पुरुष को मिलना निमित्तरूप सत्संग है। स्वयं को स्वयं में स्थिर रखना उपादान सत्संग है।

510. पू१० - जिसे इस चमड़े का मोह है ऐसे चमारों को आत्मज्ञान होना कठिन है, जौहरी के लिए आसान है। मूल जवाहरात को - मूल्यवान तत्त्व को पहचान लो, उसके बोक्स पर - डिब्बे पर दृष्टि न रखें, हीरे पर दृष्टि रखें।

511. पू११ - जिन्हें आत्मज्ञान नहीं है ऐसे लोगों का संग असत्संग है। ऐसे संग में रहनेवाला सम्प्रदायित्व का कैदी बनेगा। विशेषतः कुगुरुओं का संग असत्संग है और वह सब से अधिक हानिकारक है।

512 पू१२. - अपनी आत्मा के अनुसंधान को बनाये रखनेवाला बल स्वविचारबल है। देहात्मबुद्धि को मार कर स्वरूप स्थिति में स्थिर करनेवाले, परमकृपाळुदेव के ये वचन हैं।

513 पू१३ - आत्मविचार निरंतर रहे उसे कहते हैं स्वरूप जागृति। परन्तु जो मोहनिद्रा में सोया हुआ है वह कभी जाग्रत होता ही नहीं। उसका सब कुछ लुट जायेगा। वह सब कुछ खोता है।

514 पू१४ - आत्मभ्रान्ति के कारण ही आत्मा में शुभाशुभ कल्पना होती रहती है और कर्म उपार्जित होते हैं। वह कर्मों को शाता अशाता के रूप में भोगता ही रहता है। शाता का अर्थ है अंतर्दाह और अशाता का अर्थ है बाह्यांतर दाह। आत्मविचार के बिना आत्मज्ञान का उदय होता नहीं है। जैसे जैसे आरम्भ और परिग्रह कम करेंगे, असत् प्रसंग टलते जायेंगे। सत्संग के प्रभाव से असत्संग टलता है। चेतना बाहर से हट कर स्व में समा जाती है तब आत्मानुभव होता है। दृष्टि बाहर रखें तो बंध है और अंतरंग रखें तो मोक्ष है।

515. पू१५ - मुनि अर्थात् जिसका मन मौन हो गया है। शुभाशुभ कल्पना चुप है, टल गई है वह मुनि है। जितने अंश में स्वत्व में समझ आये, अनुभव हो उतने अंश में मन मौन हो जाता है

516. पू१६ - मन रूपी मस्तक जिसने मुंडवाया है वह मुनि है। समकितधारी को जगत का भान नहीं होता है लेकिन आत्मा का भान तो अवश्य

होता है। वे भावनिद्रा से मुक्त होते हैं। जिनके जीवन में आत्मप्रकाश प्रवर्तित है वे आत्मा के लक्षपूर्वक द्रव्यनिद्रा लेते हैं। भावनिद्रा तो टल गई होती है - जब से आत्मानुभूति हुई है तब से। प्रभुचरण में जो लीन हो जाय वह भक्ति की बात है और आत्मा की श्रेणी लग जाय वह तत्त्व की बात है।

517. पू१७ - किसी भी समय लक्षधारा खण्डित न हो वह है सर्वविरति।

518. पू१८ - साधुता का प्राण है ..... अन्तर्लक्ष अखण्ड लक्षधारा। कम से कम दो घड़ी के लिए जिसका मन मौन होता है उसे आत्मदर्शन होता है। जहाँ समकित है वहाँ मुनिदशा है। समकिती को बीजज्ञान होता है। निद्राकाल में भी जिसे लक्ष रहता हो उसे प्रवृत्तिकाल में प्रतीति क्यों न हो?

519. पू१९ - जिसे अखण्डधारा सिद्ध होती है उसकी निवृत्तिकाल में केवलस्वरूप स्थिति होती है। नारियल के गोले के समान आत्मा की देह से भिन्न स्थिति होती है।

520. पू२० - जिसे अपने आपका भान नहीं है वह मोहाधीन है। व्यवहार में दक्ष हो गया, सक्षम हुआ तो क्या हुआ? जिसे अपने आप का भान नहीं है वह मोहाधीन है। यह अनादिय भ्रान्ति है।

521. पू२१ - दान में दाता को ही प्राप्त करो तो भीख माँगना छूट जायेगा। अगर माँगना है तो भगवान को ही माँग लो। नहीं तो कदम कदम पर भिखारी बने रहोगे। यह भक्ति के माध्यम से संभव है। चित्तवृत्ति का अनुसंधान भगवान में करना ही भक्ति है। आत्मदर्शन के बिना अपनी आत्मा का अवलम्बन असंभव है।

522. पू२२. - कोई तेरा नहीं है; तू किसीका नहीं है। वास्तव में तू असंग, अनुत्पन्न, अविनाशी है। शरीर से शरीर उत्पन्न हुआ है और आरोप करता है कि यह मेरा है। यह बेहोशी है या नहीं? जब विवेक के प्रकाश में हम विचार करेंगे तब बेहोशी हट जायेगी और स्वरूपजागृति बनी रहेगी। गड़बड़ मिटाने का यही एक उपाय है- स्वरूप जागृति।

523 पू२३ - अपने आपकी शक्ति के आविर्भाव के बिना सद्गुरु कोई उपाय नहीं कर सकते। आप अभ्यास बले कोई विरला ज पावे। मन की हलचल को मिटाओ और चैतन्यजल में गोते लगाओ।

524. पू२४. - परमात्मस्वरूप के सिवा सब आशाओं को खतम करो। तब स्वरूपप्राप्ति का मार्ग हाथ आयेगा।

525. पू२५- अपने विचारों के द्वारा ज्ञानप्रकाश को देखने के लिए प्रयत्न करें। जो जो परपरछांई (परिभावनछाया) पड़ती है उसे हटाते हुए ज्ञानप्रकाश को ही देखने का प्रयोग करें। यह केवलज्ञान श्रेणी का अभ्यासक्रम है। सर्व प्रकार के अवलम्बन-रहित स्थिति करो। आत्मा को खोजना सुख को खोजना है।

526. पू२६ - जिस प्रकार है उसी प्रकार वस्तु अगर समझ में आ जाय तो फिर भ्रम नहीं रहेगा। शंकाएं टल जायेंगी। इस काल में केवलज्ञान नहीं हो सकता ऐसे उपदेश के कारण केवलज्ञान की आराधना विस्मृत हो गई है।

सर्व के ज्ञानमात्र से आत्मा को सुखसंवेदन होता नहीं है, अपनी आत्मा को जानने से आत्मज्ञान से सुखसंवेदन होता है। पर को देखने से, सुख कभी भी प्राप्त नहीं होगा, अतः स्वयं को ही देखें, स्वयं को ही जानें, और स्वयं में ही स्थिर होने का प्रयास करें तो

सुख प्राप्त होगा।

527. पू.२७. सब को जानना है तो इसलिए कि सब को जान कर आत्मा को पृथक् करना है। सब को जान लिया और अपने आपको नहीं जाना यह अज्ञान है।

528. पू.२८ - 'आत्मसिद्धिशास्त्र' अर्थात् आत्मा को सिद्ध पद पर बिठा दे ऐसा शास्त्र। उसमें विशेष भाव उठने चाहिए। कृपाळुदेव ने आगमों के सार के रूप में इसमें मर्म प्रकाशित किया है। इस काल में ही केवलज्ञान की आराधना हो सकती है। आत्मा की आराधना यही केवलज्ञान की आराधना है।

529. पू.२९. - आत्मविचार के आधार पर आत्मज्ञान प्राप्ति करें तब सुख प्राप्त होता है। तब तक परम कृपाळु का शरण-स्मरण चालु रखें। ज्ञानीजन अंजनशलाका कर के आँख खोलते हैं।

530 पू.३० - सामायिक काल तक ज्ञेयतत्त्वों से यदि असंग स्थिति साधी जा सके तो दो घंटे निरावरण दशा तथा उतने अंशों में आत्मसमाधि का भी अनुभव होता है। सद्विचार के द्वारा यही सम्भव है।

531 पू.३१ - यह मूढ़ जीव अनावश्यक विचार करता रहता है और कस्तूरी मृग की भाँति सुख को ढूँढता फिरता है। जहाँ है वहाँ ढूँढना नहीं है। दृष्टि उस ओर जाती ही नहीं है, वैसी ही बात हमारी भी है।

532. पू.३२ - जो विचार अपनी अपनी आत्मा के कल्याण हेतु ही हैं, उन्हीं विचारों को हम छोड़ बैठे हैं। कर्मरूपी भैंस, शाता-अशातारूप दो सींग उन्हीं के विचार करते हैं। सींगों से भिड़ते हैं और दुःखी होते हैं। आत्महित के अतिरिक्त जो भी चिन्तन है वह दुष्ट चिन्तन है।

Jineshw

533. पृ.३३ - जितना आत्मज्ञान हो उतनी आत्मसमाधि होगी। मानसिक पीड़ा का शमन हो जाना यह समाधि है। मन की पीड़ा व्याधि है और शेष सब उपाधि है।

534. पृ.३४ - आत्मज्ञानज्योति को प्रगट करना है, और वह, उसके निरन्तर विचारों के द्वारा प्रगट होगी। उसके लिए सत्संग में निवास करने से सद्गुरुकृपा से वह कला हस्तगत हो जाती है। सत्संग के द्वारा अपनी समझ को ठीक कर के उदयानुसार व्यवहार करें। आत्मविचार में जाग्रत रहें। सुषुप्तावस्था में नहीं, जाग्रत रहें। एक क्षण के लिए भी अन्तरजागृति हो जाये तो उसके लिए मोक्ष विशेष दूर नहीं है। ग्रंथिभेदन होना चाहिए। 'आत्मप्राप्ति की अखण्ड धारा वह क्षायिक समकित है।'

535. पृ.३५ - गुरु अर्थात् मार्गदर्शक। जो दूसरों की सेवा पर नहीं है वह महान माना जाता है। सेवा के आदान प्रदान में जगत में बड़ी चोरी हो रही है, उसका परिणाम है अशाँति। सेवाचोर कभी शाँति प्राप्त नहीं कर सकता। इस जीव ने सेवा लेने के इतने सारे तरीके अपनाये हैं कि उसका वापस चुकाया ही नहीं है। जब तक हाथपाँव चलते हैं तब तक दूसरों की सेवा न लें तो शाँति रहती है और श्रम भी सार्थक होता है। 'स्वाश्रय'।

536. पृ.३६ - जो सत्संग के द्वारा वस्तुस्वातंत्र्य को समझें, अपने आपको, जिन्होंने समझा, सत्संग के आधार पर, सद्विचार का अवलम्बन ले कर समझा तो सर्व तंत्र स्वतंत्र मालूम पड़ेगा। जो शाश्वत कहलाता है उनकी स्वतंत्रता याने शाश्वतता दूसरों की सेवा याने मदद पर निर्भर नहीं है, क्यों कि जिसमें शाश्वतता है उसमें इनको टिकाने का भी सामर्थ्य है। सिद्धभगवान

किसीके न संगी हैं, न साथी। अपनी रक्षा के लिये अपनी आज़ादी में मस्त हैं। ज्ञानानन्द का अखूट खजाना प्रगट है, परितृप्त है, अन्य किसीकी सेवा आवश्यक नहीं है। क्या हम ऐसे नहीं रह सकते?

सिद्ध समान सदा पद मेरो।

बिलकुल साम्य है आत्मा का है। अन्तर है- उनकी आत्मा व्यक्त है और हमारी अव्यक्त।

537 पू३७- शुभाशुभ कचरे के ढेर में हमारा आत्मवैभव छुपा हुआ है। इस कचरे को हटाये बिना आत्मवैभव प्रगट नहीं हो सकेगा। अनादिकाल का कचरा हटाना तो दूर रहा, अधिक बढ़ाते जाते हैं। यह बढ़ता है शुभाशुभ कल्पना से। स्वयं को याद नहीं रखते और दृष्टि शरीर पर रहती है, आत्मबुद्धि है, इसलिए अहं और मम बुद्धि होती है, और कर्मों का ढेर लगता है, इसे मिटाना ही होगा। श्रीसद्गुरु की शरण में जाकर- तब यह कला हाथ आयेगी। यह कला हाथ आने से कचरा हटने लगेगा। और आत्मवैभव नज़र आयेगा।

538. पू३८- शुभ भावना से जो होता है वह पुण्य कर्म और अशुभ परिणति से जो है वह है पाप कर्म। इसको हटाये बिना स्थाई शान्ति, स्थाई आनन्द हम कैसे उपलब्ध कर सकेंगे? हमको या ने, अपनी आत्मा को गलत मानना, गलत देखना यह प्रथम दोष है। (तेरे अपने ही दोष के कारण तुझे बंधन है। सन्त की यह प्रथम शिक्षा है। तेरा दोष इतना ही कि परको अपना मानना और स्वयं को ही भूल जाना।) यह परम कृपालु की पाठशाला का प्रथम पाठ है।

539 पू३९ - दुःख का अनुभव सभी को होता है और इसे मिटाने का प्रयत्न भी चालु है।

फिर भी अब तक वह दुःख मिटा नहीं है। दिल के दर्द की शाँति नहीं मिली है। व्रत-जप-तप-स्वाध्याय करने पर भी दिल का दर्द नहीं मिटा, क्योंकि अपने आपको भूल गया है। यही तो कारण है। जिन्होंने पाया है उसका आधार किसी बाह्य चारित्र पर नहीं है। इसीलिए जिनेन्द्र देव ने पन्द्रह भेद से सिद्ध कहा है।

५४० पु४० - इस शरीर में आत्मबुद्धि (अँधानुरूपी) अँधकार के कारण हुई है। इस बात को समझ कर - सद्गुरु के द्वारा समझ कर अँधकार को दूर किया, दृष्टि आत्मा में लगी तब अँधेरा दूर होता है, आत्मानुभव होता है, स्पष्ट दिखाई देता है। यह सम्यग्दृष्टि है। घट में उजाला हो वह है सम्यग्दृष्टि।

५४१. पु४१ - सुख को खोजना, चैतन्य को खोजना या आत्मा को खोजना - एक ही बात है। खोजते तो हैं, लेकिन घर में अँधेरा होने के कारण दृष्टि टिकती नहीं और वापस लौटते हैं।

५४२ पु४२ - 'सद्गुरु भगवान' - महात्मा या ने सद्गुरु। सत्पुरुष - जिनको आत्मदर्शन हुआ है। अगर इनका प्रसंग मिल जाय और भूल समझ में आ जाय और कमर कस के आज्ञानुसार प्रयोग शुरु कर दिया जाय। जिनके परिचय से हमारी आझादी का भान हुआ, दुःख मिटाने का जिन्होंने रास्ता बताया और जो अपने आपमें समृद्ध और संतुष्ट हैं वे सद्गुरु भगवान हैं।

५४३. पु४३ - जो कभी पीछेहट नहीं करते वे भगवान महावीर के अन्तेवासी हैं।

५४४. पु४४ - एक परमाणु जब तक हमारे सामने नहीं रहता, तब हम स्वदेश जा सकते हैं। तब तक तो फाटक ही नहीं खुलता। सत्पुरुष की शरण में जो है वह सुखधाम में है।

५४५ पु४५ - जो अचिंत्य खजाने का हमें दर्शन कराते

है, जो हमें भान में लाते हैं वे महान गुरु हैं परम कृपालु देव और जो उस मार्ग पर हैं वे भी हमारे मार्गदर्शक बन सकते हैं। अभी हमारे सामने मार्गदर्शक के रूप में इस पद पर आरूढ़ हैं वे गुरु हैं। जिनसे हम परिचय का लाभ उठा सकें वे हमारे लिए गुरु के स्थान पर हैं। वे सही रूप में स्वरूप जानकारी रखते हैं, इसलिए हमें बहुत लाभ होता है। गुरुपद के परिचय से हम महान बन सकते हैं। जिनके गुरुपद से हम महान बन सकते हैं वे हमारे गुरु है। अपने आत्मप्रकाश से दूसरों की आत्मा को प्रकाशित करते हैं इसलिए गुरु महान हैं। पूर्ण निरावरण स्वरूप जिन्होंने देखा है और जो और जो अपने आप में पूर्ण हैं वही तो हमारे लिए महान गुरु हैं।

546. पू ४६ - जो हमारी अभिन्न मान्यता थी वह भूल श्री सद्‌गुरु के द्वारा मिटा दी गई और हमने निरावरणस्वरूप प्राप्त कर लिया यह परम गुरुकृपा है।

547. पू ४७ - अनादिकाल से जो छुपा हुआ था वह आत्मचन्द्र जिन्होंने बताया और बीजरूप श्रद्धा कराई वे हमारे महान गुरु हैं।

548. पू ४८ - महान गुरु सेवा लेते नहीं हैं - देते हैं। जो देना बाकी रह गया है और लेनेवाले सब आते हैं, वे एक साथ और तुरन्त देणदारी - ऋण को पूर्ण कर देते हैं।

549 पू ४९ - भगवान महावीर ने साढे बारह वर्ष तक सब को बुला बुला के दे दिया। वहाँ तक तो परम गुरु के रूप में ही रहे। लेकिन जब पूर्णतः निरावरण हो गये, करजदारी से - ऋण से मुक्त हो गये, आत्मा परमात्मा को दे दी, परमात्मा बन गये। स्वयं

आत्मभाव में ही डूबे रहे और जिनेन्द्र भगवान बन गये। (शरीर संसार को दे दिया।)

550. ५५८ - गुरुपद में जो भी आरूढ़ हैं और जो हमें भवरोग मिटाने के काम में लगाते हैं वे हमारे लिए महान गुरु हैं।

551. ५५२ - रोग मिटाने के लिए जैसे अनेक डॉक्टर होते हैं लेकिन जो हमारा रोग मिटाते हैं वे ही हमारे लिए सही डॉक्टर हैं, इसी प्रकार जो महान गुरु हमारा भवरोग मिटाने के लिए समर्थ हैं ऐसा विश्वास हो जाय उनकी शरण में सर्वार्पण कर देना चाहिए। कर्तृत्व अभिमान उनके हृदय में कभी नहीं होता, क्योंकि वे सद्गुरु हैं। High Standard - उच्च कक्षा वाले शायद न मिले और कम Stage-भूमिकावाले मिले फिर भी हमारे लिए बहुत काम के हैं, क्योंकि वे मार्गदर्शक हैं। मैट्रिक पास व्यक्ति एक-दो-तीन सिखा सकता है।

552. ५५२ - हम संतप्त हैं - इसलिए बोधवर्षा आवश्यक है। तो चातुर्मास के काल में महात्मा पुरुष एक स्थान में स्थिर होते हैं और बोधवर्षा करते हैं। इस वर्षा से हमारी आत्मा को शान्ति प्राप्त होगी और हमें बहुमान के साथ हृदय में उनका बोध धारण करना होगा। तो हम भवरोग मिटा सकते हैं। अगर इनकी आज्ञाओं का परिपूर्ण पालन किया तो जल्द से जल्द भवरोग से मुक्ति प्राप्त होगी।

553. ५५३ - श्रीसद्गुरु पर निर्विकल्प विश्वास होना चाहिए। कसौटी होती है और कृपा भी होती है सद्गुरु की, तब बेड़ा पार होता है। निर्विकल्प विश्वास से ही काम होता है।

554 ५५४ - सद्गुरु धन्वंतरी वैद्य हैं, हमें अपने आपको उनके चरणों में समर्पित करना चाहिए।

555. पू.पू.५५ सद्गुरु के चरणों में आत्मसमर्पण करने का दिन है गुरुपूर्णिमा। हम सोये हुओं को जो जगायें और हमारी आत्मा में जो बीजरूपा शक्ति है उसका आविर्भाव करायें वे सद्गुरु हैं।

556. पू.पू.५६ - संतों के ज्ञान की गहराई पता लगाने-वाला संत हो जाता है।

557. पू.पू.५७ - परमार्थ दृष्टि से चेतन और चेतना का संबंध अनादिकाल से टूट गया है, उसको जोड़ते हैं सद्गुरु।

558. पू.पू.५८ - आजकल जहाँ साधुलोग पहुँचे वहाँ वहाँ अलगाव हो जाता है। कोई विलक्षण संत ऐसे होते हैं जो जोड़ते हैं। मार्गदर्शक के रूप में एक ही बस हैं।

भवरोग को मिटाने के लिए भी एक ही मार्गदर्शक खोजना चाहिए।

'बीजो मनमान्दिर आणुं नहीं'।

हृदय एक, उसमें अनेकों को बिठाने से गड़बड़ हो जायेगी। सत्संग अनेकों का भले करें, परन्तु समर्पण तो एक सद्गुरु-भगवान परम कृपालु देव को ही करें।

559. पू.पू.५९ - शरीर में जो आत्मबुद्धि है उसको दूर करने के लिए उपदेश द्वारा भेद विज्ञान की कुंजी बताते हैं - परमकृपालु हैं सद्गुरु। निर्विकल्प विश्वास के साथ सदाचरणपूर्वक गुरु महाराज के द्वारा दिये गये मन्त्र का निरन्तर रटण करो। माषतुष मुनि अनपढ थे, लेकिन निर्विकल्प विश्वास के कारण केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

560. पू.६० - देव तत्त्व के प्रति इशारा करते हैं और अपनी ही परमात्मदशा बताते हैं वे हैं सद्गुरु।

561. पू.६१ - सद्गुरु और सत्पात्रता दोनों का मेल हो गया तो काम हो जाता है। दर्शन-

ज्ञान फोंकवाला चिमटा है। उससे हमने अहं-मम याने शरीर भाव को पकड़ा है, लेकिन उसको छोड़ कर हम आत्मभाव को पकड़ेंगे तब परमात्मा के अनुसन्धान से ज्योत प्रकट होगी।

562. पूज्यश्री - कलाकार के चरण में एक पथ्थर गिर जाता है और वह पत्थर भगवान बन जाता है तो सद्गुरु की शरण में रहनेवाला पार क्यों न हो पाये?

563. पूज्यश्री - कलाकार की दृष्टि है छबी पर और उसे देख कर मूर्ति बनाता है, कचरा हटाता है। मूर्ति तो अंदर है, वह तो केवल कचरा हटता है।

'धर्म चैतन्य विज्ञान का प्रयोग है।'

564. पूज्यश्री - जिनके द्वारा सत्देव तत्त्व और सत्धर्म तत्त्व प्रगट होता है, जो प्रगट कराते हैं, वे सद्गुरु हैं।

'बहिरात्म भाव को हटाकर अन्तरात्मा का लक्ष रख कर परमात्मा का ध्यान करना यह है विधि। कलाकार छबी को देखा करता है जिससे भूल न हो जाय। उसी प्रकार सब हटा कर जो रहे वह है आत्मा। अव्याबाधस्वरूप।

जे द्रष्टा छे दृष्टिनो, जे जाणे जे रूप।
अबाध्य अनुभव जे रहे, ते जीवस्वरूप॥

माता तो दूध की बोतल देती है, चूसने का काम है बेटे का, माता का नहीं।

565. पूज्यश्री - आत्मप्रतीतिधारा अखण्ड रहे यह है क्षायिक समकित।

देव गुरु पर जो दृढ़ श्रद्धा है यह तो है निमित्तरूप में और अपनी आत्मा पर जो बलवान पकड है यह है उपादान रूप में।

566 पूज्यश्री - आज का दिन समर्पण का दिन है -

गुरुपूर्णिमा।

आज गुरुपूनम का उत्तम समय है इसलिए गुरुचरणों में समर्पित हो जाना है।

567 पू.गु.श्री - सद्गुरु की आज्ञानुसार वर्तें।' गुरु की स्थापना कर के उनकी आज्ञानुसार चलने का विधान आज भी प्रवर्तित है।

568 पू.गु.श्री - 'गुरुपूनम उत्तम क्षण
करूँ आत्मसमर्पण आज रे
आपना चरणे नमी ...।'

जिनेश्वर की आज्ञा है गुरु के चरणशरण में रहने की। महत्ता पद की है, व्यक्ति की नहीं।

'समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत।'

569 पू.गु.श्री - 'सद्गुरु को हृदयमंदिर में स्थापित कर चित्तवृत्ति को झुकाना यह है नमन।'

'नाथ मारो एक तूंहि ज आजथी,
परम कृपाळु गुरुराज रे
आपना चरणे नमी रे।'

पालन करे वह पति। आध्यात्मिक पालन करे वह प्रियतम - पति। जिसका जन्ममृत्यु का रोग ही मिट गया है ऐसा पति मैंने प्राप्त किया है, हे श्रद्धासखी ...

'ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे ...।'

570 पू.गु.श्री - अंजनशलाका हृदय के नयनों को खोलने की विधि है। यह विधि सद्गुरु करते हैं।

571 पू.गु.श्री - आत्मा की क्रिया भावक्रिया है। शेष सब द्रव्यक्रिया है। आजकल द्रव्यक्रिया बताते हैं। लेकिन भावक्रिया कौन बताता है? नाथ की शरण में अनाथ भी नाथ होता है। 'तू मेरा नाथ है, एक अनाथ का नाथ।'

572 पू.गु.श्री - साकार उपासना की श्रेणि में से पसार होने के बाद निराकार श्रेणि में टिकना सम्भव होता है। सम्यग्दर्शन का

निमित्त साकार उपासना है।" पुनः निमित्त है। साधकीय हृदय में सतीभाव चाहिए। जिस रूप में आराधना करेंगे उस रूप में अन्तःस्थित भगवान परिणत होते हैं, दिखाई देते हैं।

573 पृ९३ - वृत्ति एक में हो तो सामर्थ्य प्रगट होता है। सम्पूर्ण महिमा एकाग्रता में है। अपनी प्रभुत्व शक्ति उस रूप में प्रगट होती है। इतनी शक्ति का भण्डार यह आत्मा फिर भी बाहर भटकते हैं यह आश्चर्य है! पति के परिवार के साथ लोककाज छोड कर व्यवहार करेगी। लोकलाज उसमें बीच में नहीं आयेगी। पति तो एक ही। वृत्ति तो वहीं केन्द्रित। आत्मोत्थान के लिए लोकलाज काम की नहीं।

574 पृ९४ - विचारभेद सब के स्वतन्त्र हो, किन्तु प्रीतिभेद तो नहीं होना चाहिए, यह कभी न रखें। विचारभेद होने पर जो प्रीतिभेद रखते हैं यह पाशवी याने पशुवृत्ति है।

मित्रा दृष्टि में जो साधक प्रवेश करता है वह साधक है। वह सम्पूर्ण विश्व को अपने कुटुम्ब के समान मानता है। मित्रा दृष्टिवाले साधक से प्रीतिभेद हो सकता ही नहीं है।

575. पृ९५ - सहजात्मस्वरूप परमगुरु के समान मैं हूँ - यह केवल बीज है। अगर उसे अन्तर में बोया तो ऊगेगा अन्यथा कोई चुग जायेगा। भवसमुद्र में से पार उतरने के लिए यह सेतु है। भिखारी था शाता सुख का परन्तु स्वधन बता कर रंक से राजा बनाया स्वसाम्राज्य का। अर्थात् देह में से आत्मबुद्धि हट गई और स्व में आत्मबुद्धि हुई। अपने अनन्त ऐश्वर्य का स्वामी बना! अहो! अहो! उपकार ए आपनो, भूलुं ना कदी महाराज रे आपना चरणे नमी रे!!

"जन्मभूमि डुमरा में प्रथम दर्शन" ॥7

वैशाख, संवत् २०२५ का आँखों देखा हाल

- प. लक्ष्मी बहन मेघजी शाह -

ॐ

॥ श्री सहजात्मस्वरूप परमगुरुभ्योनमः ॥

एक ऐसे अपूर्व दिन ने दस्तक दी कि जंगम-तीर्थ जन्मभूमि में पधारे। आंतरिक साज सह उल्लासपूर्वक स्वागत-शोभायात्रा (सामैया) को निहारा। "ओ आ रहे हैं, ओ आ रहे हैं" कहते हुए कुछ मनुष्यवृंद तो दूर दूर निकल गए। कुछ तो जगहों की छत पर, दीवार पर, तालाब की ऊँची ऊँची विशाल छत पर आराम से बैठे। कुछ के चेहरों पर अधीरपन दिखाई दे रही थी। कुछ बहनों को चिंता हो रही थी कि गाय कैसे आ जाएँगी, चोविहार की बेला भी बीत जाएगी। आवाजें उठ रहीं थीं उत्सुकता में कि अभी पधारेंगे, अभी पधारेंगे, अभी थोड़ा रुक जाइए। परंतु योगीराज के आगमन के आसार दिखाई नहीं दिये इसलिए मानव समूह वापस लौटा। बचे खुचे भाई बहनें ही रहे। उतने में तो राजराही आ पहुँचे।

"पूज्य महाराज साहब पधारे" यह शब्द सुनकर लौटा हुआ मानवसमूह पूज्य श्री 'भद्र' की ओर दौड़ आया। अहो! उस अपूर्व दर्शन का दृश्य!! चारों ओर आनंद ही आनंद छा गया!!!

"उत्सव रंग वधामणाँ, मारा नाथने नामे।
पच्चीस वरसे पधारिया, प्रभु डुमरा गामे॥

(बधाई उत्सव रंग की, मेरे प्रभु के नाम... पच्चीस बरसों पश्चात् पधारे, प्रभु डुमरा गाम!)

सूर गूँज उठे। प्रातः ५ से ७ प्रार्थनाभक्ति। इतनी शांति कि मानों पृथ्वीने भी प्रसन्नता की चुनरी ओढ़ ली। "हे प्रभु! हे प्रभु!" का आत्मनाद करुणा भाव से बहता रहा और मानों अमृत-बाँसुरी बज उठी। अमृत के घूँट उस गुणीयल महात्मा के गले के नीचे उतरे जिसका स्वाद

स्वाद

मुझें भी प्राप्त होता — 'अमृत पिया अलख योगी ने और तृप्ति पाई इस आत्मा ने।'

वर्षों के बाद मिलनेवाले वयोवृद्ध लोगों को अत्यंत स्नेहपूर्ण आवाज़ से बुलाते — 'मा! अंई काय आयो?' (   ) और बुजुर्गों के हर्ष की अश्रुधारा बहने लगे। गाँव में जो शय्यावश थे उनके घर पर व नम्रता के अनुपम नमूने, दया के पुञ्ज दर्शन देने जाते। निकट-दूर के किसी कोने में भी कोई बाकी नहीं रहा होगा कि जिसने उस दिव्यमूर्ति के दर्शन किए न हों। गाँव का चोराहा, बाज़ार, गली — सभी मानव सागर से उमड़े रहते।

जहाँ वे अलख योगी ठहरे थे वहाँ बाहर के दरवाज़े की दोनों ओर बैलगाड़ियाँ, वेल्डे(   ) और टैक्सियाँ पंक्तिबद्ध खड़े रहते। दस बजे योगीराज गोचरी (भिक्षा-आहार) लेने — प्राप्त करने हेतु मकान के बाहर पधारे उसके पूर्व ही दोनों बाजु पर बच्चे, बहनें, माताएँ, बुज़ुर्ग जन — सभी पंक्तिबद्ध खड़े ही रहे हों जो दूसरे छोर के देरासर (जिनमंदिर) तक। 'राजदुलारे' दर्शन प्राप्त कर देरासर में से बाहर पधारे और जिस के घर आहार-पानी लें, उस घर तक फिर से पंक्ति लग जाय। कितनी ही बार देखो तो फिर भी देखते

लगभग सात घंटे तो संत की अमीधारा श्रवण करने मिलती। प्रातः सायं प्रार्थना-भक्ति दो दो घंटे। शांति इतनी कि सुई तक गिरे तो भी सुनाई दे। दो समय प्रवचन। कड़ी धूप भी बाधा नहीं बनती, क्योंकि शीतल छाँव सत-संत पसारे रखते। श्रवण हेतु हम सहेलियाँ साथ में प्रथम पंक्ति में बैठती। मैं उस विरल विभूति को एकटक निहारती ही रहती। तनिक भी इधर-उधर देखुं नहीं। निहारने-देखने योग्य तो जगत में ये योगीश्वर हैं। आँख की पलक हिले उतना भी नहीं देखना सहा नहीं जाता। 'चमड़े की आँखो में क्या देखना है? आँख में मिर्च डालो..।' (ऐसे वचन सुनने पर) कहने का मन हुआ कि, "हे चिंतामणि! तेरे चर्म-नेत्रों में

भी परम रबीरी 'राज' दिखाई देते हैं। ...और गिर्च पड़ी मेरे अहंभाव में — अज्ञानभाव में।" परन्तु हम सभी हँस पड़ते। नारायण को निरखने में लाज शर्म क्या? फिर भी विचार हुआ कि आज सबसे आखिर अंतिम पंक्ति में बैठें।

अलख योगी के अधिकारी मनहर नयन हमें खोज रहे थे। हम पर दृष्टि पड़ते ही हँस दिये। उस कुण्ण देव की मुस्कुराहट देखने पर मेरे 'भद्र' मुझे बालमुकुंद दिखाई दिए !! मानों वहीं से एक ही छलांग लगाकर उस नन्हें से नटवर को हमारी गोद में समा लें, झुला लें, खेल खिला लें — जसोदा मैया बनकर !!!

अहो! उस दयालु की मुद्रा कैसी अद्भुत अलौकिक भासित होती! मानो अकेली नितान्त निर्दोषता! मैं उस गिरिधारी को एकटक देखती। ऐसा अनुभव होता, कि ऐसी मुद्रा तो कभी भी और कहीं भी नहीं देखी। अकेली वीतरागता लहराती रहती। वाणी में से अमृत प्रवाहित होता। आत्मभवन में से प्रस्फुटित होती आवाज़ में मानो शाश्वत साज परिपूर्ण भरा हुआ लगता।

बालाश्रम के बालकों के लिए प्रवचन आयोजित किया गया था। उसमें अपने स्वानुभव का अनुभव अनुपम शैली में बहाया। शीर्षक था — 'भगवान कैसी वस्तु है!' परंतु उसका अनुभव कब हो सकता है? दर्शन दें? पुकार सुने? यह आत्मा अकेली अशरणता, अनाथता अनुभव करे तब भगवान साक्षात दर्शन दें। कहा कि, "मैं नदी में थोड़ा पानी समझकर उस पार जाने के लिए कूद पड़ा। जैसे जैसे आगे बढ़ता गया वैसे वैसे नीर की गहराई में उतरते जाना बना। पानी घुटने तक आ गया। उस से आगे बढ़े। कमर तक पानी घिर गया। बाद में पानी छाती तक पहुँचा। वह आखिर कंठ तक आ गया। ऊपर आभ (आकाश), नीचे पानी। न आगे बढ़ा भी जा सके, न वापिस लौट सकें। ऐसी असहाय स्थिति बन गई मानो अभी ही यह देह जल में समा जाएगा, लयलीन हो जाएगा। ऐसी निराधार स्थिति में इस आत्मा ने परमात्मा से प्रार्थना की, पुकार की: "हे प्रभु! हे प्रभु! क्या करूं? दीनानाथ दयालु..!"

प्रभु ने पुकार सुनी। आंखें खोलकर देखा तो नदी की बाढ़ के नीर उतर गए थे। मैं जहाँ उस ध्यानस्थ मुद्रा में खड़ा था उसके नीचे बड़ा पत्थर रखा आ गया था।।

अहो! क्या यह अजीब वर्णन था कि सुनते ही रहे और आस्वाद का अनुभव करते ही रहे। प्रवचन में वे मुख्य सार रूप में अनुभव का प्रमाण देकर दृष्टांत देते थे। मोटर और ड्राइवर, नारियेल और गोला, लालटेन, छाँछ-मक्खन, बल्ब और करन्ट — ऐसा तो प्रथम ही सुनने को प्राप्त हुआ, इसलिए प्रश्न उठता कि कौन जाने क्या कहते हैं? कुछ पता नहीं चलता। परंतु उस पुनित पुरुष के प्रति प्रेमभक्ति बढ़ती ही रहती। उस प्रेमभक्ति के नीर कभी भी उतरते नहीं।

सीधा सीधा मिलना संभव नहीं था, बात की जा सकती नहीं थी। इसलिए बीच की व्यक्ति के द्वारा मिलने का समय निश्चित हुआ। परंतु मुझे पहले से सूचना दी नहीं गई इसलिए प्रभु के दरबार में अठारह अभिषेक की घृत की बोली घोषित की तब बारी आई। इतने में इस ओर से अचानक बुलावा आया कि, चलिये पू. गुरुदेव से मिलने का समय बीता जा रहा है। यह सुनकर मैं घबड़ाई — बावरी बनी। फिर भी शक्ति एकत्रित करके एक पू. माता को देरासर के भगवान सौंपे और मैं साकार से मिलने के लिये उमंग और आशा के साथ आयी। मनमें सोचा कि मैं लिखकर दूंगी उसे वे अवश्य पढ़ेंगे। उसे पढ़कर हृदय की गहराई में उतार दूंगी। परन्तु हाय मेरा कमभाग्य! मुझे प्रदान किये गए समय में बीच में दो बहनें बैठी थी।

और साथ वाले ने मुझे वापिस लौटा दिया और जैसे गाय को खींचा जाता है वैसे मैं लौटी। उस धुरंधर के द्वार छोड़ते हुए एक बार फिर देख लेने हेतु जीव ललचाया। तो उस निर्मल पुरुष के करुणामय नयन इस अभागी आत्मा की ओर देख रहे थे। दया-निर्झरित वाणी से बोले — "आप को कुछ पूछना नहीं है?" मैं घबरा गई और चुपचाप बाहर चली गई। आखिरी बेला आई तब मैं घनश्याम को देखकर घर में आई। इतने में तो उस मुक्तविहारी 'राजहंस' ने चिरविदा ली।

"भूले रे पड़े हम भूले रे पड़े,
तुझे पहचाने बिना हम भूले रे पड़े।"

*

"अहो! अहो! कच्छ देश के डुमरा गाँव की पावन भूमि कि ऐसी पुनित आत्मा का अवतरण हुआ। धन्य! धन्य!! उस भूमि-आसन-घर-गाँव-रत्नकुक्षी जगदंबा जननी और पवित्र पू. तात को लाख लाख बार वंदन हो!!!"

डुमरा गाँव में जिनमंदिर में प्रतिष्ठा महोत्सव था। अपूर्व अवसर था। श्री क्षमानंदजी पधारे थे। विधिविधान चल रहे थे। परंतु मानव जनसागर तो पू. श्री गुरुदेव बिराजमान थे वहीं उमड़ रहा था। घृत की बोली भी कौन बोले? कारण सभी भव्यात्माओं की वाणी प्रकट होती कि, "प्रतिष्ठा तो बहुत-सी देखी और फिर भी देखने का अवसर मिलेगा, परंतु ऐसे योगी को कहाँ देखेंगे? कब दर्शन कर अमृतवाणी का पान करेंगे?"

इसलिए मनुज जनसागर संत की सुवास प्राप्त करने हेतु भँवरे की भाँति गुंजन उतने में ही करता कि जहाँ सत् का सूर्य उदित हुआ था, कल्पतरु की छाया प्रसारित हुई थी, वहाँ लोग जगत की माया बिसार कर भव का निस्तार हो ऐसे साकार भगवंत की मुद्रा देखने हेतु वहीं बैठे रहते। कई हज़ारों की संख्या में पँगत भोजन करने बैठती।

उस पुनित महात्मा के पादारविंद पड़ने से केवल एकांत पवित्र वातावरण था। न फिसाद, न विरोध, न झगड़े। आख़िर घृत की बोली भी वहीं ही बोली गई। न दुःख, न भूख, न आलस्य, न थकान, न निद्रा। प्रार्थना-प्रवचन का समय हो जाय उससे पूर्व ही आगे से (हम) बैठक लगाते थे। बिलकुल निकट और समीप ही, कि जिससे उस परम प्रकाश की छाया पड़े और यह आत्मा पवित्र बने, पावन बने।

एक बार प्रवचन के आधार पर, उस अवधूत योगी के आत्मभवन में से अगम पंक्तियाँ अवतरण होती हुई बहने लगीं। अहो! अहो! केवल सत्-माधुर्य!! शाश्वत संगीत।

"पँथड़ो निहालुं रे बीजा जिन तणो रे"

— इस आत्मगुंजन से सभा झूम उठी या नहीं उसका मुझे पता नहीं था, परंतु यह आत्मा तो झूम उठी। "अलखनामधुरस भीना" का वह गुंजन — आत्मसूर — आत्मआवाज़ — आत्मा का संगीत बारह माह सहज भाव से अनुगुंजित ही होता रहा। निद्रा में, जाग्रति में, स्वप्न में, संसारव्यवहार करते, फर्ज बजाते हुए, बाहर जाते-आते, खाते-पीते

के प्रसंग आने पर जाना पड़े ऐसे ऐसे समयों पर उस गुणीयल महात्मा की मुद्रा सामने ही दिखती रहती, लहराती ही रहती। "पंथडो निहाळुं रे" ये पंक्तियाँ मैं गाती ही रहती। कौन जाने कौन गपाता? इतना आनंद अनुभव में आता कि मानों हवा में चल रही हूँ! भाव की पंखों से भगवान की ओर जाने उड़ रही हूँ। नाथकृपा से निहाल हुए। परंतु वह आनंद, उसकी अपूर्वता लिखी नहीं जा सकती, कही नहीं जा सकती, वर्णित नहीं की जा सकती। फिर भी वह ईश्वर वेदन बारम्बार उपयोग में आना और कोई गुप्त तत्व हृदय में प्रेरणा करता कि "लिख!" इस कारण से इस लेखिनी ने अलख की अल्प रूपरेखा लिखी। सहजस्वरूप तो लिखा - नहीं जाता!

मेरे पूज्य नाना के घर पर भक्तरत्न श्री हिराचंदभाई आदि का निवास था। रोज साठ से लेकर अस्सी भाई-बहन भोजन करते थे। स्व० क्षमामूर्ति, गुणीयल मेरी पूज्य माँ सारा दिन रसोई घर में रहकर अतिथियों का सेवा-सत्कार असीम हर्ष से करतीं। उन्हें प्रवचन सुनने का समय नहीं मिलता। मैं कहती "माँ! रसोईघर से बाहर निकलो!" परंतु जिस के अंग अंग में सेवाभक्ति का रंग सराबोर भय हुआ हो उनका प्रत्युत्तर कैसा हो? "लक्ष्मी! मुझे यहाँ भी आनंद आता है।"

पू०नाना के यहाँ पू०गुरुदेव दो बार आहार हेतु पधारे थे। आहार करने के बाद हमने पू०गुरुदेव समक्ष शिकायत की कि "साहब! मेरी माँ धर्म नहीं करती। उन्हें कुछ कहिए!"

पू०श्री गुरुदेव बोले कि, "वेजबा सर्व से अधिक धर्म करतीं हैं। सेवा यह धर्म है।" फिर मेरी माँ ने कहा कि, "मैंने कैसे निकाचित कर्म बाँधे हैं? अभी तक सुरध प्राप्त नहीं हुआ!"

पू०श्री गुरुदेव आर्द्र हृदय से बोले कि, "वेजबाई! चिंता न करें। नवपद की रोज पाँच मालाएँ, इस प्रकार छह महीने तक गिनें कि बेड़ा पार!" यह सुनकर पू०माँ के हर्षाश्रु बह निकले। मानों अभी ही बेड़ा पार हो गया! सेवा-तान में आ गए। और आखिर उस विरल विभूति के अमृतवचन फलित हुए। पू०माँ ने अत्यंत हल्की-सी सहजतापूर्वक "अरिहंत अरिहंत" जपते हुए देह छोड़ा था।

फिर से वे मस्त फकीर आहार लेने पधारे। उन्हें आहारदान देने का लाभ उठाने हेतु नारणपुर, मंजल, वांढी इत्यादि गाँवों से बहनें पधारी थीं। आखिरी छोर के बरामदे से लेकर सीढ़ी तक और जहाँ वे राजदुलारे बिराजमान थे वहाँ तक पंक्ति थी। एक एक दृश्य अद्भुत था। मेरी पू. माँ बोलीं "लक्ष्मी! जब प्रभु महावीर का अभिग्रह था और गोचरी लेने फिरते थे तब जैसा अभी है वैसा ही दृश्य होगा?" मैंने कहा, "हाँ माँ! ऐसा ही!"

आहार-पानी संपन्न कर उस पुनित पुरुष ने विदा ली तब मेरे पू. नाना से कहा पू. गुरुदेव ने : "मूळजी बापा! आशीष दें!" पू. बापा तो हर्ष में आ गए। बोल उठे, "आपको जल्दी मोक्ष मिले।" यह सुनकर मुक्त विहारी ने अजीब प्रसन्नता का अनुभव किया। परन्तु तुरन्त ही पूज्य मामा ने पूज्य नाना से कहा कि, "बुड्ढे! तुमने मटियामेट कर दिया!" सुनकर पू. नाना बापा घबराये कि क्या गलती कर दी? तो पू. मामा कह उठे, "अगर उन्हें जल्दी मोक्ष हो जाएगा तो हमारा क्या होगा? तारेंगे कौन?" पू. बापा शरमिंदा हो गए।

प.पू. गुरुदेव स्थानशाला में पधारे। वर्षों के पश्चात मोक्षगामी आत्माओं का मिलना हुआ। ऐसे नन्हें-से बालक (वही) महात्मा बन गए देखकर बालब्रह्मचारिणी पू. बाईजी गद्‌गदित हो गए। हर्ष की अश्रुधारा बही। दोनों एक दूसरे का नमन-वंदन कर रहे।

गाँव के छोर पर धर्मशाला में शांतमूर्ति परम पूज्य पद्मविजयजी महाराज साहब और पूज्य माणिकविजयजी महाराज साहब बिराजमान थे। वहाँ वे प्रभुत्वधारक लघुता बतलाकर दर्शनार्थ गए। अहो! वह दर्शन-मिलन तो अलौकिक था। नम्रता के वे अनुपम रूप बोले: 'प्रथम मैं नमन करूँ!' और प.पू. पद्मविजयजी महाराज साहब बोले : 'प्रथम मैं नमन करूँ! सचमुच आप बड़े हैं!!'

प्रवचन में कितने ही दृष्टांत देते थे वे करीब करीब स्मृति में हैं। विनोद भी करवाते कि "इस टकेमूंडे (मुंडित मस्तक वाले) पर कोई सेल्स-टैक्स वगैरह है?" छिपकली बतलाते हुए दो बहनों को मौन रखने को कहा। मुझे "तत्त्वज्ञान" अपने करकमल से प्रदान किया और उसमें लिख दिया : "सहजात्मस्वरूप परमगुरु, आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे।"

राज शाम को जंगल की ओर सिधार जायँ। इस दिशा की ओर गए होंगे ऐसा सोचकर पीछे जायँ, पर कहीं पर भी मिले नहीं।

150

आखिर इस कमभागी आत्मा ने समर्थ पुरुष को खो 124
दिया! बारह वर्ष का अंतराय नहीं, दुष्काल पड़ा और मैं संसार में
भटकती रही। अंतराय टूटा तब मेरा भाग्य फिर से फूटा!
अब कहाँ खोजूं? मेरा कोई नहीं रहा। बिलकुल अकेली बाहु
पसार कर बैठी हूं। केवल एक आश लगाये कि मेरे प्रभु
मुझे खींच लेंगे। मेरी नैया को पार लगा देंगे। क्योंकि
आखिर प्रेमभक्ति की मुक्त डोर से बंधे हुए हैं। इसलिए
यह आत्मा निश्चय ही मुक्त होगी।

डुमरा गाँव से विदा ली तब शोक के वातावरण
ने घेर लिया। सैकड़ों की संख्या होते हुए भी सूनकार लग
रहा था, क्योंकि रोशनी तो उस 'राजदुलारे' की थी।
जय हो सद्गुरु देव की!! हे ज्वलंत ज्योत!!! जहाँ आप
हैं वहाँ से तत्त्व को प्राप्त कर सकें ऐसे तार झंकृत करा दें
कि जिस से आत्मा होकर परमात्मा को भजें और भव से
पार हो जायें। अस्तु॥ ॐ शान्तिः॥

हम

— o —

|| श्री सहजानन्दघन गुरुगाथा ||

||श्री सद्‌गुरु महिमा||

जन्मशताब्दी पर शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयंज्योति का आत्मचिंतन

·श्री सद्‌गुरु महिमा·

· सहजानन्दघन अमृतवचन ·

·निश्चय और आश्रय·

"यहाँ* आने के पश्चात् इस आत्मा को एक ऐसा निश्चय हुआ है कि इस देह को छोड़कर यह आत्मा वहाँ पहुँचेगी जहाँ कृपालुदेव हैं। बीच में कहीं भी भटकना मिट गया। अब उस पद के लिए अधिक पुरुषार्थ ही करना है – करते रहना है। जगत् के प्रति देखना ही नहीं है। समझ कर समा जाना है। केवल ज्ञानियों का ही अवलंबन लेकर कमर कस कर लगे रहना है। यद्यपि इस समझ के अनुसार पुरुषार्थ हो नहीं रहा है वह भाग्य की मन्दता है, फिर भी भटकने का भय नहीं है। कृपालु की कृपा समझनी चाहिए कि उनका आश्रय लेकर और निश्चय के द्वारा प्रत्येक जीव इस काल में निकट भव्य बन सकता है।

(* हंपी श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम पर : आश्रम संस्थापना पश्चात्)

"उत्कृष्ट भाव से आश्रय और निश्चय होने पर वर्तमान देह का त्याग कर के उन्हीं के चरणों को सम्प्राप्त किया जा सकता है। .... केवल परम पुरुष के प्रति अपना आश्रय और निश्चय अडोल रहना चाहिए। दुनिया परिवर्तित होती रहे किन्तु अपना ज्ञानी के प्रति जो शरणभाव है उसमें किसी प्रकार का बदलाव न आये – परिवर्तन न आये तो बेड़ा पार! परमकृपालु देव ने इस रहस्य की ही पुष्टि सर्वत्र आलेखित की है। यही धर्म का राजमार्ग है। उसी मार्ग पर हम यथाशीघ्र आगे बढ़ें ऐसी शक्ति कृपालु देव हमें सदा सर्वदा प्रदान करें।

(परमकृपालु देव आश्रय + शरणभाव + निर्विकल्प विश्वास : अनन्य आत्मशरणप्रद ...)

(पार के मार्ग पर पार बनकर ही चला जा सकता है)

"दिव्य चक्षु की प्राप्ति के हेतु तो केवल दिव्य दृष्टि वाले सद्‌गुरु की ही सेवा अनिवार्य है। जो कोई व्यक्ति ऐसे सद्‌गुरु की चरणसेवा करता है वही आत्मसाक्षात्कार कर सकता है, अन्य कोई नहीं।" ("बिना नयन पावे नहीं, बिना नयन की बात; सेवे सद्‌गुरु के चरन...)

(– श्री सद्‌गुरु महिमा : २६२-२६३-२६४)

· योगीन्द्र युगप्रधान सहजानन्दघन प्रकाशन प्रतिष्ठान ·

जिनभारती, बेंगलोर

CLASSIFIED SETS of V.B.I.F'S MONUMENTAL CD

Presented with Great Masters' Grace

By Prof. Pratapkumar Toliya, Smt. Sumitra .P. Toliya, Late Kum. Parul .P. Toliya & A Galaxy of Artistes

(126)

SET-4B:

Y. Y. SAHAJANANDGHANJI'S DISCOURSES:

* Paramguru Pravachanas : 1 to 5
* Panch Samavayas – Guj.
* Atmabhan – Vitaragata – Hin.
* Dashalakshana Dharma: 1 to 10
  (Rare series unifying all jain sects last talks of Great Self Realized Master of the present age)
* Navkar Mahima & Samadhimaran Ki Kala
* Sri Kalpasootra: 1 to 13
* ATMA-SAKSHATAR KA ANUBHAVKRAM : 1 to 5 * SRIMADJI GYANDASHA: Shatabdi (1967)

Copyright Producers
VARDHAMAN BHARATI
INTERNATIONAL FOUNDATION
Prabhat Complex, K.G.Road, Bangalore-560009.(INDIA)
"PARUL", 1580, D.S. College Road, K.S.Layout, B'lore-78
Phone: 080-26667882/09611231580/09845006542
080-65953440. E-mail: pratapkumartoliya@gmail.com
Website: www.vardhamanbharati.in
" : WWW.pratapkumartoliya.ind.cc

App. 767683
3201